भूमि-क्रांति की महानदी

लेखक
मनमोहन चौधरी

सर्वसेवा संघ-प्रकाशन
1956

विषय-क्रम

यात्रा के पथ पर विनोबाजी के साथ श्री गोप बाबू

1. "सबै भूमि गोपाल की"

सन् 1952, 23 मई का दिन था। उत्तर प्रदेश की भूदान पद-यात्रा के दौरान में विनोबाजी हमीरपुर जिले के डकोर पड़ाव से आगे बढ रहे थे। बीच में नाश्ते का समय आया। यात्रीदल जंगल में से गुजरनेवाले मार्ग के एक किनारे पर रुका। वहाँ स्वागत के वास्ते एकत्रित ग्रामीण जनता के साथ बैठकर यात्रीदल ने नाश्ता किया।

वहॉ से दो मील पर बसे हुए मंगरोठ से आयी हुई वह ग्रामीण मंडली जो भूदान-यज्ञ के लिए अपनी एक सौ एक एकड़ की श्रद्धाजलि लायी थी, विनोबाजी ने उसे स्वीकार किया और अपने छोटे-से प्रवचन में उनके सामने एक नया विचार रखा। "सबै भूमि गोपाल की"—सारी जमीन भगवान की है। फिर मालकियत मिटाकर ईश्वर की जमीन ईश्वर को लौटाने की हिम्मत क्यों नहीं करते हो!

रोज सुबह शाम विनोबाजी के दर्शन के लिए और उनकी वाणी सुनने के लिए, जो हजारों की ग्रामीण जनता रोज एकत्रित होती थी, उनसे मंगरोठ निवासियों को अलग कर पहचानने की कोई निशानी नहीं थी। उत्तर प्रदेश के और हजारो छोटे-मोटे गाँवों के जैसा ही मंगरोठ भी एक सौ छह परिवारों का

एक छोटा-सा गाँव था। लेकिन फिर भी एक फ़रक तो था, उसके पीछे एक इतिहास तो था; जिसके कारण विनोबाजी के विचार-बीज को मंगरोठ के हृदय में अनुकूल क्षेत्र मिला।

मंगरोठ के ज़मींदार दीवान शत्रुधन सिंह अपनी जवानी में हिंसक क्रांति के माननेवाले थे। वे सशस्त्र लड़ाई के द्वारा अंग्रेज़ी राज खतम करने का स्वप्न देखते थे। मंगरोठ क्रांतिकारियों का एक महत्वपूर्ण अड्डा था। जब भारत के क्षितिज पर गांधीजी का उदय हुआ तो दिवान साहेब के विचार बदले। उन्होंने सत्याग्रह के मार्ग को अपनाया और उनके नेतृत्व में मंगरोठ के नव जवानों ने आज़ादी की लड़ाई में बहुत बड़ा पराक्रम करके दिखाया।

मंगरोठ-वासियों ने त्याग और पराक्रम के मीठे फल चखे थे, इसलिए विनोबा की वाणी से उनकी पुरानी वीर वृत्ति फिर से जग उठी और दिन-भर उनमें विचारों का मंथन चलता रहा। शाम को इटोलिया की प्रार्थना-सभा में भी वे शामिल हुए। रात को ग्यारह बजे गाँव के सारे किसानों की बैठक हुई। दिवान साहेब ने विचार समझाया तो लोगों ने शंका प्रकट की—"हमारा गुज़ारा कैसे चलेगा?" दिवान साहेब ने कहा—"हम मंदिर में देवता को भोग चढ़ाते हैं। फिर उस प्रसाद को सब लोग बाँटकर खाते हैं। देवता थोड़े ही प्रसाद खाते हैं?"

लोगों को जंच गयी और सभी लोग दान देने के लिए तैयार हो गये। पहला दानपत्र दिवान साहेब ने भरा और दूसरे ही दिन दोपहर को मंगरोठ के एक को छोड़कर शेष सारे किसानों के सर्वस्वदान पत्र विनोबाजी को अर्पित हो गये और भारत के अनगिनत अख्यात गाँवों में से यह एक गाँव दुनिया के नक्शे पर चमक उठा। विश्व के इतिहास में पहली बार एक गाँव के मालिकों ने स्वेच्छा से, प्रेम से, अपनी मालकियत मिटा दी।

भूदान-यज्ञ की शुरूआत के दिनों में तेलंगाना में ही विनोबाजी ने स्पष्ट शब्दों में यह घोषित किया था कि "हवा और पानी की तरह ज़मीन पर भी हरेक भूमिपुत्र याने हरेक मनुष्य का अधिकार रहना चाहिए।"

उन्होंने समझाया था—"भूमि हमारी माता है हम उसके पुत्र हो सकते हैं, उसके स्वामी बनने की धृष्टता हम कैसे कर सकते हैं?" अब मंगरोठ में इस सत्य ने मूर्त रूप लिया।

ग्रामदान हो जाने के बाद मंगरोठ में नव निर्माण के काम को तत्काल हाथ में नहीं लिया जा सका। एक साल बीत गया और इस बीच मंगरोठ पर आसपास के देहातों से अश्रद्धा तथा विरोधी विचार का ज़ोरदार हमला हुआ और लोगों की श्रद्धा डगमगा उठी आख़िर काफ़ी उथल-पुथल के बाद शंका

और भय का बादल कट गया और इस प्रसंग में से मंगरोठ-निवासी दृढ़ीभूत श्रद्धा व विश्वास लेकर निकले।

अब मंगरोठ में ज़मीन के नये नियोजन का सवाल सामने आया। कुछ विचारकों को यह स्वाभाविक ही दीखता था कि स्वामित्व विसर्जन के बाद सारे गाँवों की खेती को एक माना जाय, उसे सामूहिक रूप से चलाया जाय, सब लोग एक साथ काम करें और जो पैदावार हो उसे आपस में बाँट लें। रूस में चलनेवाली सामूहिक खेती या दूसरी जगह चलनेवाली सहकारी खेती का आदर्श इनके सामने था।

लेकिन विनोबाजी की सलाह दूसरे प्रकार की थी। उनको यह शंका थी कि हमारे गाँव के किसान इतना शीघ्र सामूहिक या सहकारी खेती के लिए तैयार नहीं हो सकेंगे। उनमें गणित आदि के ज्ञान की कमी है और इसलिए सहकारी खेती के संचालन के लिए आवश्यक लेखा आदि रखना उनके लिए शक्य नहीं होगा। उन्हें कुछ लिखे-पढ़े कारकुनों की सहायता की आवश्यकता होगी। और यह संभव है अपने विशेष अधिकार तथा क्षमता के कारण वे गाँव पर अपनी सत्ता चलावें और शोषण भी शुरू करें। इसलिए भूदान में मिली ज़मीन के बंटवारे के साथ सहकारी खेती के शर्त को जोड़ने से उन्होंने इनकार किया। भूदान की ज़मीन परिवारों में अलग अलग बाँट दी जाती है। लेकिन उसमें किसीको मालकियत का अधिकार,

याने उसे बेचने, रेहन रखने या दूसरे ढंग से हस्तांतरित करने का अधिकार नहीं दिया जाता। जिस गाँव से मालकियत मिट गयी, उसके लिये भी सिफ़ारिश यही थी कि वहाँ की ज़मीन भी उसी तरह बाँट ली जाय तथा सामूहिक खेती के प्रयोग के लिए थोड़ी-सी ज़मीन रख ली जाय। फिर पाँच-दस परिवार इकट्ठे मिलकर अगर खेती करना चाहें तो उन्हें वैसा करने के लिए प्रोत्साहन दिया जाय; लेकिन वैसा करने के लिए किसीको बाध्य नहीं किया जाय।

मंगरोठवासी अपने भविष्य के बारे में सोचने बैठे तो परिवारों में ज़मीन अलग-अलग बाँट देना ही उनको पसंद आया। अब यह सवाल सामने आया कि किस सिद्धांत के अनुसार बंटवारा हो? आदर्श तो बराबरी का ही हो सकता है। लेकिन गाँव में कुछ ऐसे परिवार थे जिनके पास काफ़ी अधिक ज़मीन थी। उनको सबके साथ बराबरी के स्तर पर एकदम लाया जाय तो उनको विशेष कठिनाई होने की संभावना लोगों को दिखी। मसलन शत्रुघ्नसिंहजी को चार सौ एकड़ ज़मीन थी जिसमें से वे खुद 80 एकड़ का काश्त करते थे। बराबरी के हिसाब से मिलनेवाली दस बारह एकड़ ज़मीन पर उनका गुज़ारा कैसे चलता? अतः लोगों ने उनको कुछ अधिक 45 एकड़ ज़मीन देना तय किया और वैसे सात और परिवारों को अधिक ज़मीन मिली। शेष किसीको पांच एकड़ से कम नहीं दी गयी।

एक ज़माने में मंगरोठ एक बड़ा तथा समृद्ध गाँव था। उसकी आबादी पांच हज़ार की थी। गाँव में कुल 5,100 एकड़ ज़मीन थी। इसमें से एक हज़ार एकड़ नदी के किनारे की अच्छी ज़मीन में ऊँचे दर्जे की बागवानी होती थी। लेकिन गाँव के जमींदार के अत्याचार के कारण लोग वहाँ से इधर-उधर भाग गये और अब सिर्फ़ 106 परिवार ही बचे थे। बागवानी की ज़मीन पानी से कट-कटकर नष्ट हो गयी। अब वह मृत्तिकाक्षय की भयानकता का एक अच्छा नमूना बन गया है। अब वहाँ सिर्फ़ 800 एकड़ ज़मीन पर खेती होती थी, कुछ ज़मीन दूसरे गाँव के लोगों के हाथ में थी और शेष सारी पड़ती ही थी। अतः गाँव में ज़मीन का अभाव नहीं था। दो सौ एकड़ पड़ती ज़मीन आबाद करने पर सबको उचित प्रमाण में ज़मीन मिलना संभव था।

गाँववालों ने वैयक्तिक खेती पसंद करने पर भी 36 नये भूमिवान परिवारों ने अपनी जोतों की 306 एकड़ जमीन को एकत्रित करके उसपर सामूहिक खेती करना पसंद किया है। गाँव की ओर से सामूहिक खेती के लिए 50 एकड़ रखे गये हैं। इसपर गाँव के सब लोग काम करेंगे। इसके पैदावार का उपयोग गाँव के सर्वसामान्य कामों के लिए करने का विचार है।

मंगरोठ में पहले के ज़मानों में कई प्रकार के गृह उद्योग चलते थे, जिनमें से उनकी बुनाई, बढ़ईगिरी, लोहारी तथा

चमड़े की रंगाई के काम टूटे-फूटे स्वरूप में ज़िंदा हैं। अभी भी यहाँ के टैन किये गये चमड़े उस प्रदेश में मशहूर है। इस काम से गुज़ारा करनेवाले छह परिवारों ने जमीन भी नहीं ली। क्योंकि अपना धंधा ही उनको अपने लिए पर्याप्त मालूम हुआ।

गाँव का सारा कारोबार संभालने के लिए वहाँ सर्वोदय मंडल नाम की संस्था की स्थापना की गयी है। गाँव के 21 वर्ष से अधिक वय के हर भाई-बहन इसके सदस्य हैं। इसके रोज़मर्रे के कारोबार को संभालने के लिए एक कार्यवाहिका समिति है जिसकी सदस्य-संख्या 15 है। भूदान में अर्पित मंगरोठ की सारी ज़मीन की मालकियत तथा उसके नियोजन का समस्त अधिकार विनोबाजी ने इसी मंडल को सौंप दिया है। इस मंडल का यह एक महत्वपूर्ण नियम है कि इसके सारे निर्णय एकमत से हुआ करेंगे। वोट और पक्षभेदों को इसमें कोई स्थान नहीं होगा। गाँव में ज़मीन का बँटवारा तथा खेती का नियोजन मंडल के द्वारा ही होगा। क्या-क्या फ़सलें बोयी जानी चाहिए, तथा किसको क्या बोना चाहिए इसकी सूचनाएँ मंडल ही दिया करेगा। खेती-सुधार, ग्रामद्योगों का प्रसार तथा दूसरे सारे विकास-मूलक कामों की ज़िम्मेवारी भी इसी मंडल के ही रहेगी।

मंगरोठ में अभी जो वितरण का काम हुआ है वह कायम के लिए नहीं है। *मंडल को अधिकार है कि वह समय-समय पर*

इस संबंध में नये सिरे से विवेचन करे और विनोबाजी की यह सूचना है कि सामान्यतः हर दस साल में इस प्रकार का नया विवेचन हो और परिवारों की सदस्यसंख्या में परिवर्तन तथा दूसरे कारणों का ख्याल करते हुए हर परिवार को दी जानेवाली ज़मीन के प्रमाण में फेरफार किया जाय।

वहाँ निर्माण की योजनाएँ भी शुरू हो गयी है और नयी तालीम की शाला, सहकारी समिति, धान्य-भंडार तथा खादी के काम व्यवस्थित ढंग से चल रहे हैं।

इस तरह मंगरोठ में इस ज़माने के अन्यतम सर्वश्रेष्ठ क्रांतिकारी प्रयोग का श्रीगणेश हुआ जिसका विकास तथा विस्तार आगे चलकर कोरापुट में हुआ है, जहाँ इसने विशाल गंगा का रूप धारण किया।

2. भूमि समस्या का वैचारिक असमंजस्य

जब से दुनिया में समाजवादी विचारों का उदय हुआ है तब से क्रांतिकारी विचारकों के सामने यह द्वंद्व बराबर खड़ा है कि ज़मीन का समवितरण हो या समाजीकरण? मालकियत व्यक्ति की या समाज की? दुनिया में खास करके एशियाई मुल्कों में ज़मीन की मालकियत एक ज़माने में मुट्ठी-भर लोगों के हाथ में चली गयी। एक ओर भूमि के विपुल विस्तारों के मुट्ठी-भर मालिक तथा दूसरी ओर भूमि के अधिकार से वंचित अगणित जनता—इस तरह का पक्षभेद पैदा हो गया।

इस स्थिति में सहज न्यायबुद्धि यही कहती है कि जनता को उसका अधिकार लौटा देना चहिए, जो मालकियत मुट्ठी-भर लोगों के हाथ में केंद्रित थी उसको उस ज़मीन की सच्ची सेवा करनेवाले करोड़ों के हाथों में बाँट देना चाहिए। दूसरी ओर, दुनिया की मूलभूत समस्याओं पर विचार करनेवाले विचारक सामाजिक शोषण तथा हिंसा के जड़ को ढूँढ़ते हुए इस नतीजे पर पहुँचे कि उत्पादन के साधनों पर निजी मालकियत ही इन सारे अनिष्टों का अन्यतम मुख्य कारण है। मालकियत के बल पर ही मनुष्य दूसरों के श्रम को छीन सकता है, खुद किसी प्रकार के श्रम किये बगैर ही समाज के श्रम से उत्पन्न

सारी सुख-सुविधाओं में हाथ बंटा सकता है। इसलिए निजी मालकियत का निर्मूलन ही सामाजिक क्रांति का मुख्य ध्येय माना गया। रूसी क्रांति के नेता लेनिन ने कहा था—"ज़मीन के लिये किसान की आसक्ति में ही पूँजीवाद का जड़ है। किसान का व्यक्तिवाद ही एक दिन साम्यवाद के खिलाफ़ सबसे बड़ी ताक़त का स्वरूप धारण करेगा। इसलिए समाजवाद की स्थापना के लिए निजी मालकियत पर प्रतिष्ठित इस व्यक्तिवाद को निर्मूल करना होगा।" लेकिन कैसे? कब? जो मालकियत आज मुट्ठी-भर लोगों के हाथ में है उसे अगर छोटे-छोटे टुकड़ों में बंट दी जाएगी तो उसकी ताक़त बढ़ न जाएगी? इसलिए शुरू से ही ज़मीन का राष्ट्रीकरण क्यों न हो? यह प्रश्न क्रांतिकारियों के दिमाग़ में मंडराता रहा। उधर यह वास्तविक स्थिति उनकी आँखों से ओझल नहीं रही कि जमीन के लिए किसान की भूख में ही पुरानी समाज व्यवस्था के जड़ों को उखाड़ डालने की शक्ति की संभावनाएँ भरी पड़ी हैं।

इसलिए जब रूसी क्रांति के प्रारंभिक के दिनों में वहाँ के किसानों ने ज़मींदारों की ज़मीन छीन ली गयी और आपस में बाँट ली तो वास्तवदर्शी लेनिन ने उसको मान्यता दी। लेकिन किसानों को किसी प्रकार के प्रत्यक्ष नेतृत्व देने की शक्ति उनमें नहीं थी। अपनी ज़मीन की भूख तथा आदिम न्याय बुद्धि के अलावा किसान को और किसी प्रकार का नेतृत्व उपलब्ध नहीं

था। वास्तव स्थिति को क्रांतिकारियों ने वास्तव दृष्टि से मान लिया; लेकिन उनकी निगाह उस भविष्य के दिन पर गड़ी रही जिस दिन निजी मालकियत को खतम करके किसानों के छोटी-छोटी जातों को विशाल कलेक्टिव कामों में एकत्रित किया जा सकेगा और इस तरह समाजवाद की नींव मज़बूत की जा सकेगी।

पन्द्रह साल के बाद दूसरी पाँचसाला योजना के समय स्टालीन को लगा कि अब इसका सुअवसर आया है। उस समय स्टालीन ने अपनी स्वभावसिद्ध निर्ममता के साथ ज़मीन का राष्ट्रीकरण शुरू कर दिया। किसानों में बड़े, मझले तथा छोटे भूमिवान और भूमिहीनों में वर्गभेद और वर्गसंघर्ष को बढ़ावा दिया गया। पहले छोटे भूमिवान तथा भूमिहीनों की सहायता से बड़े भूमिवानों का निर्मूलन किया गया और मंझले वर्ग को कुशलता से अलग रखा गया। फिर क्रम से मंझले तथा छोटे वर्गों के भी हाथ से लिया गया। अपनी समझ में न आनेवाली इस कारवाई के खिलाफ़ किसानों ने बगावत की। सरकार के हाथों में सौंपने के बजाय लाखों मवेशियों को, पशुओं को मारकर खा जाना उन्होंने पसंद किया। लेकिन केंद्रित शासन की फ़ौज़ी ताकत के सामने बेचारे क्या कर सकते थे?

दुनिया के इतिहास में इस अभूतपूर्व हिंसात्मक प्रयास के कारण कितने लाखों मनुष्य मौत के घाट उतारे गये, कितने परिवार नष्ट-भ्रष्ट हुए। मनुष्य अपने परिवार तथा समाज से

विच्छिन्न होकर कंसनट्रेशन कैंपों के कवलित हुए, उसका कोई ठीक हिसाब किसीके पास नहीं है। एक आदर्श समाज की स्थापना के लिए इतने बड़े तथा निरर्थक हिंसा व दुःख की तुलना अन्यत्र कहीं नहीं मिलेगी।

आख़िर स्टालीन को अपनी नीति बदलनी पड़ी। राष्ट्रीकरण के लिए प्रत्यक्ष जबरदस्ती के बजाय अप्रत्यक्ष दबाव के मार्ग अपनाये गये, उसी के फलस्वरूप आज रूस में 70 फ़ी सदी जमीन सरकारी कलेक्टीव-फ़ार्म के अंतर्गत हो गयी है। लेकिन वहाँ मानव की हालत क्या हुई है? वहाँ स्वतंत्र बुद्धि रखनेवाले, विवेकवान, प्रेमी मनुष्य, आनद तथा निर्भयता से नये जीवन के निर्माण में सहयोग दे रहे है या एक दूसरे को शंका की दृष्टि से देखनेवाले, अपने हृदयगत भावों को प्रकट करने में सकुचाते हुए भयभीत मनुष्य राज्य की ताड़ना से अपने समझ के बाहर के एक ध्येय की ओर संचालित हो रहे हैं।

रूस के अनुभवों से सतर्क होकर चीन, युगोस्लाविया आदि में कम्युनिस्टों ने अलग नीति अपनायी और जमीन के बंटवारे को अपने कार्यक्रम में मुख्य स्थान दिया। लेकिन उससे मूलभूत द्वंद्व का कोई समाधान नहीं हो पाया। चीन में कम्युनिस्ट क्रांति के बाद जमीन का जो बटवारा हुआ है उसमें किसानों को जमीन पर मालिकी का पूरा हक दिया गया है। जमीन बेचने, रेहन रखने आदि का पूरा अधिकार दिया गया है। परिणाम-

स्वरूप लोगों के मन में मालकियत की भावना को सुदृढ़ ही किया गया है। इसके आगे फिर से राष्ट्रीकरण तथा सामूहीकरण की बातें चलने लगेंगी, तो जनता को फिर से एक ज़बरदस्त धक्के के लिए तैयार रहना पड़ेगा, इसमें कोई संदेह नहीं।

सिर्फ़ दुनिया के साम्यवादी पक्ष नहीं समाजवादी पक्षों के सामने भी यह वैचारिक द्वंद्व रहा है। हिन्दुस्तान में 1935-40 के ज़माने में चलनेवाले किसान आंदोलन के नेतृत्व के सामने भी यह समस्या थी।

3. विनोबाजी की देन

इस जमाने की समाजशास्त्रीय विचारधारा को विनोबा जी की सबसे बड़ी देन यह है कि उन्होंने विचार के एक ही तीक्ष्ण, अलौकिक तथा हिम्मत-भरे प्रहार से इस द्वंद्व जाल को छिन्न-भिन्न कर दिया।

तेलंगाना में भूदान के प्रारंभ के दिनों में ही उन्होंने भूमिहीनों को भूमि प्राप्त करने का अधिकार घोषित करने के साथ साथ ही जमीन पर मनुष्य के स्वामित्व की असत्यता भी घोषित कर दी थी।

विनोबाजी के विचार की यही विशेषता थी कि, उन्होंने मनुष्य के आजीविका का अधिकार तथा मालकियत के अधिकारों का पृथकरण किया। आजीविका के लिए ज़मीन जोतने का तथा समाज से जमीन का उचित हिस्सा मांगने के अधिकार का पुरस्कार करते हुए मालिक की हैसियत से उस जमीन का जैसा-तैसा उपयोग करने के अधिकार का उन्होंने अस्वीकार किया। गांधीजी के ट्रस्टीशिप का सिद्धांत ही इस विचार की बुनियाद थी, जिसके अनुसार सिर्फ़ व्यक्ति नहीं, समाज भी मालिक नहीं बनता, ट्रस्टी ही बन सकता है। काल के एक अखंड प्रवाह के एक सीमित अवधि के अन्दर जिन व्यक्तियों की समष्टि से उस समय

का समाज बनता है उन व्यक्तियों का समूह समाज का आदि और अन्त नहीं है। वे एक अखंड शृंखला की कड़ी मात्र है। आज के इस समाज के हाथ में जो ज़मीन या दूसरी संपत्ति है वह आज ही के व्यक्ति-समूहों के उपभोग के लिए नहीं है। पहले भी असंख्य पीढ़ियों ने उसका उपभोग किया है और आगे की पीढ़ियों का सारा जीवनक्रम, सारी सभ्यता तथा संस्कृति इस पूँजी की नींव पर ही खड़ी होगी। इस शाश्वत काल पर दृष्टि रखकर ही हमें अपने नैसर्गिक संपदाओं का उपभोग करना होगा। फिर यह ट्रस्टीपन सिर्फ़ मानवसमाज की परंपरा के लिए नहीं है, सारी जीवसृष्टि एक परस्पर निर्भरशील अखंड रचना है। इसलिए मनुष्येतर सृष्टि का अधिकार भी विनोबाजी ने मान्य किया है।

विनोबाजी के ये विचार भारत की प्राचीन परंपरा के अनुरूप थे। इसलिए भारतीय जनता के लिए उसका मर्मार्थ ग्रहण करने में कठिनाई नहीं हुई।

गांधी या विनोबा के आविर्भाव के सैकड़ों साल पहले ही यहाँ की संतवाणी गाँव-गाँव में फैल चुकी थी—

"सबै भूमि गोपाल की या मै अटक कहा,
जाके मन में अटक है, सोही अटक रहा।"

विनोबाजी एक किसान की कहानी सुनाते थकते नहीं हैं जो अपने खेत में फसल चुगनेवाले पक्षियों को उड़ा नहीं रहा था

और विनोबाजी के पूछने पर बोला—"सूरज उग रहा है, राम का प्हर है, उन्हें कुछ खा लेने दीजिये। बाद में उड़ाऊँगा।" विनोबाजी इसका उल्लेख करते हुए कहते हैं—"हिंदुस्तान का किसान जो दरिद्र है, जिसके पास कुछ नहीं है, वह भी कहता है अभी राम प्रहर है। अभी नहीं उड़ाऊँगा। हमारे सविधान में तो हरएक की मालिकी का हक माना है। लेकिन यहाँ के किसानों के हृदय में यह नहीं है कि यह हमारा हक है। वे तो कहते हैं कि भगवान मालिक है। मै हिंदुस्तान में चार वर्षों से घूम रहा हूँ, लेकिन किसी देहात में हमारी सभा में खडे होकर किसीने यह नहीं कहा कि यह गलत है, धर्म के विरुद्ध है, नीति के विरुद्ध है।"

हिंदुस्तान की प्राचीन भूमि व्यवस्था में भी अगरेजों के जमाने की-सी सार्वभौम मालकियत को स्थान नहीं था। उस समय जमीन की नामिनल— नाममात्र—मालकियत राज्य के राजा की या गाँव के नायक की मानी जाती थी। किसान को उस जमीन को वशपरपरा से जोतने का अधिकार रहता था लेकिन उस जमीन को बेचने का या दूसरे किसी प्रकार से हस्तातरित करने का अधिकार उसे सामान्यतया नहीं था। कोई किसी खेत को छोड़ देना चाहता था तो राजा या नायक के पास उसे उस जमीन का इस्तीफ़ा देना पड़ता था और जरूरत पडने पर जमीन माँग भी ले सकता था। यह व्यवस्था अल्प दिन पूर्व

तूफान ही चलता हो या मूसलधार वर्षा, यात्रा रुकती नहीं थी।
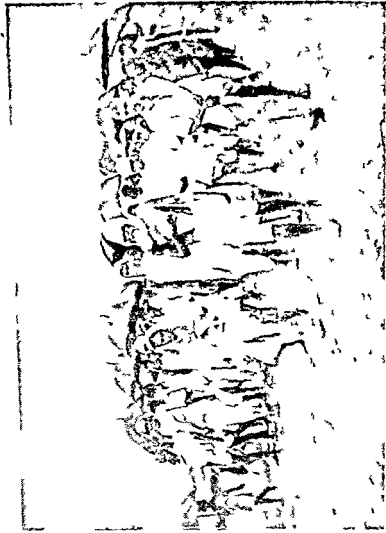
तक भी कई देशी रियासतों में और कुछ अंग्रेज़ शासित प्रदेशों में भी प्रचलित थी।

निस्संदेह, इस व्यवस्था में तथा ग्रामदान की व्यवस्था में काफ़ी फरक है। प्राचीन व्यवस्था में ज़मीन के विनियोग तथा वितरण का अधिकार राजा या नायक के हाथ में था, सारे समाज का उसपर किसी प्रकार का अधिकार नहीं था, अगरचे गाँव के संगठित समाज का प्रभाव अवश्य ही उनपर काम करता होगा। दूसरा, ज़मीन पर सबके समान अधिकार समाज के व्यवहार में स्वीकृत नहीं हुआ था। इसलिए समाज में प्रचलित ऊँच-नीच के विचार के अनुसार समाज के अलग-अलग जाति तथा वर्गों की ज़मीन पर दख़लदारी के पैमाने में फरक था। लेकिन यह मानना ही पड़ेगा कि हिंदुस्तान में पहले से भूमि पर जो सीमित अधिकार प्रचलित था, स्वामित्व विसर्जन के विचार की अनुकूल भावना पैदा करने में उसका पर्याप्त प्रभाव रहा है।

फिर भी ग्रामदान में स्वामित्व विसर्जन के साथ-साथ व्यक्ति का ज़मीन जोतने का हक स्वीकृत होता है और इस प्रकार से जिस व्यक्तिगत अभिक्रम को आज के आर्थिक क्षेत्र में महत्व का स्थान मिला है, उसका भी पूरा उपयोग इससे कर लिया है। अपनी स्वतंत्र बुद्धि तथा पुरुषार्थ से काम करने में आज जो समाधान और आनंद मनुष्य को मिलता है, इस व्यवस्था में उसके लिए पूरा अवसर रहता है। और साथ-साथ व्यक्ति

इसमें स्वेच्छा से अपने को समूह की हस्ती में दाखिल करता है और सामूहिक इच्छा और प्रेरणा के अंतर्गत रहकर सहकारी ढंग से काम करने की तालीम भी प्राप्त करता रहता है। दोनों प्रक्रियाओं में संघर्ष नहीं बल्कि सहयोग और सुसमंज समन्वय का ही दर्शन होता है।

वस्तुतः ग्रामदान का यह सारा आंदोलन ही सामाजिक सहयोग तथा समन्वय का एक विशाल और भव्य दर्शन है जो मानव समाज को क़तल और कानून के दलदलों से उठाकर सच्ची प्रगति की मज़बूत राह पर ले जानेवाले चमत्कार साबित हुआ है। सत्याग्रही दर्शन की यह ख़ूबी और विनोबाजी के हाथों से उसके प्रयोग की यह चमत्कारिता है कि दुनिया के इतिहास में स्वामित्व-विसर्जन का इतना बड़ा भारी कदम बगैर किसी प्रकार का द्वेषभाव, भय या संघर्ष पैदा किये ही, संपूर्ण तथा शुद्ध प्रेम व सहयोग की भावना से ही भरा जा सका। जिस सहयोग व प्रेम का राज्य हम स्थापित करना चाहते हैं, मानव हृदय की उन्हीं मूलभूत भावनाओं के आवाहन का सरल मार्ग ही इस अपूर्व सफलता का रहस्य है। यही सच्ची क्रांति, अहिंसक तथा अमर क्रांति का मार्ग है।

ग्रामदान में जमीन पर कर्तृत्व गाँव के हाथ में आता है, राष्ट्र के हाथ में नहीं। अतः इसके लिए एक नया शब्द बनाना पड़ा है—'ग्रामीकरण'। ग्रामीकरण के बाद सरकार के साथ

व्यक्तिगत किसान का कोई सीधा संबंध नहीं रहेगा। सरकारी लगान गाँव की तरफ़ से ही एक मुश्त में दी जाएगी, हर किसान अलग-अलग नहीं देगा। ज़मीन का सारा रेकार्ड़ ग्राम-सभा के दफ्तर में रहेगा। सारांश, गाँव ही शासन व्यवस्था की प्राथमिक इकाई बनेगा।

आज का राष्ट्र नामतः जनतंत्रात्मक होते हुए भी वस्तुतः वह सामान्य मनुष्य की पहुँच के बाहर का एक जटिल तथा दुर्बोध्य यंत्र बन गया है। चुनावों के ज़रिये राष्ट्र के क्रिया-कलापों के नियंत्रण का अधिकार आज लोगों को तत्त्वतः है; लेकिन शासन-तंत्र की रोज़ाना कार्रवाइयों में इस नियंत्रण का कोई स्थान वस्तुतः नहीं है। यह कहना गलत होगा कि आज का शासन-तंत्र समाज की सामूहिक इच्छा-शक्ति का वाहक है। वह तो अपने गतिवेग के स्वतंत्र नियमों के अनुसार ही लुढ़कता हुआ आगे बढ़ रहा है, जिस गति के साथ समाज की इच्छा-शक्ति का संयोग बहुत ही क्षीण है। इसलिए आज राष्ट्रीकरण का मतलब राष्ट्रांतर्गत मनुष्य-समाज का सामूहिक कर्तृत्व नहीं; बल्कि व्यक्ति पर बाहर के एक निर्गुण यंत्र का नियंत्रण हो जाता है। इसीलिए ग्रामराज्य की यह कल्पना गांधी जीकी थी कि जिस समाज तथा आर्थिक जीवन की प्राथमिक इकाई का पैमाना सामान्य मनुष्य की पहुँच के अंदर की हो जिससे वह अपने को समाज की समूह इच्छा के अंश के स्वरूप में बलवान तथा सार्थक माने, एक

निर्गुण यंत्र के हाथ में कठपुतली नहीं। ग्रामदान की नींव पर ही सच्चा ग्रामराज्य का निर्माण शक्य है और ज़मीन का ग्रामीकरण इस ग्रामराज्य विचार का एक स्वाभाविक परिणाम तथा अंग है।

यह इस देश की युग-युग से संचित तपश्चर्या का ही चमत्कार है कि हिन्दुस्तान को राजनैतिक स्वतंत्रता मिलने के दस साल के अंदर ही ग्राम-राज्य की यह परिकल्पना इतने व्यापक तथा विशाल रूप में कार्यान्वित करने का अवसर हमें मिला

4. मंगरोठ से कोरापुट

मंगरोठ से ग्रामदान-यज्ञ की चिनगारी पाँच सौ मील दक्षिण-पूर्व वैतरणी नदी के किनारे उड़ीसा के मानपुर गाँव में आ पड़ी और वहाँ भी यज्ञाग्नि की ज्वाला प्रकट हुई। मानपुर के एक सौ उन्नीस परिवार एक ही गोखा जाति के हरिजन हैं, मछली पकड़ना जिनका मूल धंधा था। लेकिन इस गाँव को अब खेती का आश्रय भी मिल गया था और वही इनका मुख्य धंधा बन गया है। यहाँ के कुछ लोग कलकत्ता जाकर वहाँ छोटे-मोटे व्यापार-धंधा भी करते थे। इस गाँव के साथ कुछ रचनात्मक कार्यकर्ता तथा कांग्रेस जनों का संबंध हुआ और उसी सूत्र से 1947 में यहाँ कताई शुरू हुई, पंचायत के ज़रिये गाँव के झगड़ों को निबटाना शुरू हुआ और एक प्राथमिक शाला भी कायम हुई। मानपुरवाले अभिमान के साथ इसका उल्लेख करते हैं कि 1948 से लेकर एक भी मुकद्मा उनके गाँव से बाहर नहीं गया है।

जब भूदान-यज्ञ शुरू हुआ तब उसकी लहरें मानपुर में आ पहुँची और लोगों में दान की प्रेरणा जग उठी। भूदानप्रेमी श्री सच्चिदानंद महांति इस गाँव के मित्र, सहायक, तथा पथ-प्रदर्शक थे। मानपुरवाले उनकी सलाह के लिए आते तो वे

उन्हें यही सलाह दिया करते थे कि—"दस पाँच एकड़ दान से क्या होगा, देना है तो हिम्मत करके सारी ज़मीन ही दे डालनी चाहिए।" आखिर छह एक महीनों के विचार-मंथन के बाद 1953 के 30 जनवरी को पूज्य बापूजी की प्रतिकृति के सामने मानपुरवासियों ने ग्रामदान का संकल्प ले लिया। पंद्रह महीनों के बाद 1954 के 17 मई, बुद्धजयंती के अवसर पर यहाँ की 575 एकड़ जमीन का पुनर्वितरण उत्सव संपन्न हुआ। यहाँ भी मंगरोठ के नमूने पर एक सर्वोदय मंडल की स्थापना हुई और 37 एकड़ ज़मीन सामूहिक खेती के लिये रखी गयी।

उड़ीसा में भूदान-यज्ञ का आंदोलन व्यापक रूप से कटक ज़िले में ही पहले शुरू हुआ। इसलिये यहाँ उड़ीसा का प्रथम ग्रामदान मिलना स्वाभाविक ही था। लेकिन यह आग कोरापुट को फैलने में देर नहीं हुई और वहाँ के अनुकूल वातावरण में वह प्रचंड ज्वाला के रूप में भभक उठी।

कोरापुट भारत का एक सबसे पिछड़ा हुआ और उपेक्षित प्रदेश है। मानचित्र पर इसको स्थान था सही, लेकिन प्राचीन या अर्वाचीन इतिहास में इसकी कोई हस्ती नहीं थी। यह जिला भारत के विशालतम जिलों में से है जिसके 9875 वर्गमील का क्षेत्र-फल योरप के बेलजियम या अलबेनिया जैसे राष्ट्रों के साथ मुकाबला कर सकता है। इस विशाल विस्तार में फैले हुए खेत, जंगल व पहाड़ों में बसनेवाली साढ़े बारह लाख की जनता की

तुलना भी एलबेनिया या इसराईल की आबादी से हो सकती है। इनमें 83 प्रतिशत आदिवासी हैं।

वैसे तो उडिसा में ही आदिवासियों का समुदाय काफ़ी बडा—कुल जन संख्या की 30% है। इनमें चालीस या पैंतालीस अलग-अलग जातियाँ हैं। जिनकी बोली शक्ल व सूरत तथा रस्म व रिवाज अलग-अलग हैं। इनमें से कोरापुट में कम से कम बीस जातियाँ हैं।

आदिवासियों में कंधों की संख्या सर्वाधिक है, प्रांत-भर में क़रीब 3 लाख, कोरापुट में 1 लाख 60 हजार। इसके बाद का नंबर है परजा तथा सवरों का जिनकी संख्या यथाक्रम से डेढ लाख तथा तिरपन हजार है। इनके अलावा डंब, पाण, आदि हरिजन जातियों की संख्या भी काफ़ी है। कोरापुट में आबाद जमीन का पैमाना चौदह लाख एकड का है। इसमें से मुश्किल से 30,000 एकड में सिंचाई की व्यवस्था होगी। शेष 49 लाख एकड घने जंगल तथा पहाड़ों से ही ढंके हुए हैं। धान ही यहाँ का मुख्य पैदावार है लेकिन सूखी जमीन में माडिया (रागी), कोशला, सामा (सुआँ) आदि कई प्रकार के दोयम दरजे का अनाज तथा मकई, बाजरा, ज्वार आदि की भी खेती होती है। पहाड़ों की तरी पर अरहर, अलसी आदि भी बोयी जाती है। गुणपुर तालुके में कपास की भी खेती होती है, जिसका उपयोग श्रीकाकुलम की महीन कताई के लिये होता है।

ज़िले-भर में गाँव की संख्या पौने छह हज़ार है जिनकी औसत आबादी दो सौ के करीब हैं। अकसर आदिवासियों की छोटी बस्तियों में एक ही जाति के लोग होते हैं, लेकिन मिले-जुले जातियों के गाँवों की संख्या भी कम नहीं है।

इन पहाड़ी गाँव में बाहर की सभ्यता बहुत ही कम पहुँच पायी है। और जो कुछ पहुँची है सो भी व्यापारी, साहूकार तथा सरकारी अमलदारों के ज़रिये, सभ्यता का नग्नतम, दुष्टतम स्वरूप ही है। फिर भी ये पिछड़े माने जानेवाले लोगों में संस्कारिता का अभाव नहीं था, बल्कि इनकी स्वतंत्र संस्कृति कई दिशाओं में उन्नत समझी जानेवाली जातियों से भी उच्चतर कोटि की थी। इनकी परस्पर सहयोग की भावना के उत्कर्ष के कारण ही तो ग्रामदान इतनी आसानी से पनप सका। इनकी सचाई तथा ईमानदारी भी ऊँचे दर्जे की, स्वाभिमान की भावना काफ़ी तीव्र है, जिसके कारण ये लोग किसी भी शख़्स के साथ सम्मान-पूर्वक समानता के साथ पेश आते हैं। लेकिन आज की सभ्यता ग़रीबी को मानवता का अभाव मानती है और गरीब के साथ ग़ैर-इज्जती से पेश आना ही स्वाभाविक समझती है। इस अपमान से अपने को बचाने के लिये आदिवासी, खास करके कंध, अपने को बाहर के संस्पर्श से बचाकर अपनी पहाड़ी घेराओं में सुरक्षित रखते हैं। तीव्रतम दारिद्र्य ने भी आदिवासी के दिल को संकुचित कर नहीं पाया, उसको दीन नहीं बना सका।

इसलिये किसी भी प्रसंग पर वह अपना हृदय संपूर्णतया उँडेल देता है। आप उसके गॉव में जायेंगे तो अपने पास जो कुछ सर्वोत्तम होगा उसीसे वह आपका स्वागत करेगा। तीन दिन भूखे रहने पर भी वह किसीके सामने हाथ नहीं फैलायेगा। उसके प्राण में आनंद की धारा अक्षीण है इसलिये वह दिल खोलकर हँस सकता है, नाच सकता है, गा सकता है।

यहाँ जो चीज सबसे पहले ध्यान आकर्षित करती है वह है यहाँ का शोषण। आदिवासी की सरलता तथा भोलेपन से फ़ायदा उठाकर साहूकार, व्यापारी आदि इनको अत्यंत निर्ममता से चूसते हैं। साहूकार किसीको 20 रुपये उधार दिया है, हर साल पचास रुपये चुकाने पर भी पचास साल तक उसका कर्जा नहीं मिटता और बेचारे किसान के पुत्र तथा प्रपौत्र भी उस ‘कर्ज’ को चुकाने के लिए साहूकार के यहाँ जिंदगी भर बेगारी करते आये हैं, ऊँचे सरकारी अधिकारियों की सबूत पर प्रमाणभूत इस प्रकार की सैकड़ों घटनाएँ हैं। साहूकार या तो किसान की सारी जमीन ले जाता है या पैदावार का अधिकतर हिस्सा लेता रहता है, इसमें बस एक ही दृष्टि रहती है, साहूकार की सहूलियत। ज़मीन साहुकार के हाथ में गयी तो बेचारा किसान नाममात्र मजदूरी के लिए उसपर मेहनत करता है और जमीन नहीं गयी तो अपनी मेहनत की उपज को साहुकार के खलिहान में पहुँचा आता है। दोनों प्रकारों का नतीजा एक ही होता है।

अपनी ज़मीन से बेदखल होने के बाद वह किसान नयी पड़ती ज़मीन तोड़कर आबाद करता है तो साहूकार की नज़र उसपर एकटक लगी रहती है, जब तक वह अपनी जोत के अंतर्गत न हो। इस तरह तलहटियों की समतल खेतों से भगाये जाने के कारण आदिवासियों ने पहाड़ का आश्रय लिया है जिसका लोभ दूसरे किसीको नहीं है। इन पहाड़ों पर 'पोडु' खेती करके वह किसी भी तरह से निभा लेने की कोशिश करता है; लेकिन फिर भी उसे साल-भर में पाँच छह महीने आम की गुठलियाँ, इमली और कटहल के बीज तथा जंगल के फलमूल कंदों पर निर्भर रहना पड़ता है।

'पोडु' खेती सरकार के लिए एक सिर दर्द का सवाल बन गयी है। तराई की ज़मीन में लगातार तीन-चार साल तक खेती की जाएगी तो पैदावार बहुत कम होगी, ज़मीन का कस भी निकल जाएगा। इसलिए ये लोग किसी खेत में दो-तीन साल बोने के बाद उसे कुछ सालों तक पड़ती छोड़ देते हैं और नयी ज़मीन पर खेती करते हैं। इस तरह से जंगलों की बड़ी भारी बरबादी हो रही है। लेकिन जब तक उन्हें तलहटी की ज़मीन नहीं मिलती तब तक उन्हें दूसरा क्या चारा है!

इस शोषण में सरकारी अधिकारी या किसी भी पढ़े-लिखे मनुष्य का हिस्सा नगण्य नहीं है। छोटे-से छोटे सरकारी मुलाजिम पहले गाँव में जाते थे, तो लोगों से मनमाना बेगारी करवाते थे।

कोई बड़ा अधिकारी सफ़र पर निकलते थे, तो सैकड़ों लोग उनकी सेवा के लिए दिन-भर तैनात रहते थे और उसके लिए एक दो आने की मज़दूरी मिली, तो गनीमत ही समझिये। पूर्तविभाग के ठेकेदार भी वैसे कई बार लोगों से जबरदस्ती काम करवा लेते थे। कोई आदिवासी भाई या बहन बाज़ार में भाजीपल्ला या फल की टोकरी लेकर आती थी तो सफ़ेद पोशवाले उसे उठा लेते थे और मनमाने एक दो आने फेंक देते थे। इन शोषणों का अवशेष अभी भी संपूर्णतया लुप्त नहीं हुआ है। अभी भी भूदान कार्यकर्ताओं को इनके खिलाफ़ जूझना पड़ता है।

नशाखोरी के कारण इस शोषण का रास्ता सुगम बन जाता था, लोग अपनी दुस्थिति के बारे में उसके कारण बेहोश रहते थे। इसलिए साहूकार, सरकार, व्यापारी सबके सब उसको प्रोत्साहन देते थे। नशाखोरी में शराब और ताड़ी का ही मुख्य स्थान था। गंजा, अफ़ीम आदि का प्रचलन नहीं के बराबर था।

शिक्षण के मामले में भी यह क्षेत्र पिछड़ा हुआ है। यहाँ के छह हज़ार गावों में सिर्फ़ साढ़े तीन सौ प्राथमिक शालाएँ थीं। शिक्षितों की संख्या पाँच फ़ी सदी है। स्वराज के बाद यहाँ कई नयी शालाएँ शुरू की गयी हैं और आदिवासी लड़कों के लिए आश्रम स्कूल तथा सेवाश्रम के नाम से ख़ास प्रकार के कुछ शालाएँ प्रांत-भर में चालू की गयी हैं। कोरापुट में इनकी संख्या 135 है। फिर भी यह सारी व्यवस्था महासागर में बूँद जैसी ही है।

5. कोरापुट का पराक्रम

प्रकृति की गोद में रमनेवाली इस जनता की आत्मा का बाहर की आक्रमणकारी सभ्यता वशीभूत कर नहीं सकी थी, लेकिन उसके शोषण का प्रकोप इनके जीवन को छिन्न-भिन्न कर रहा था, इसलिए स्वतंत्रता के आवाहन ने इनके प्राणों को विशेष रूप से स्पर्श किया। 1923-24 के ज़माने में आंध्र के क्रांतिकारी पुरुष श्री फितुरी सीताराम राजु की यह रंगभूमि थी। 1930 के लवण सत्याग्रह के समय भी यहाँ श्री राधाकृष्ण विश्वासराय के नेतृत्व में अपूर्व जागृति दिखायी दी। गाँव गाँव में खादी, शराब-बंदी, सामूहिक प्रार्थना आदि के ज़रिये एक नयी ज़िंदगी की लहर दौड़ गयी। 1942 के अगस्त आंदोलन में यह जागृति आख़री सीढ़ी पर पहुँची। जगह जगह लोगों ने बग़ावत की, लगान देना बंद कर दिया। उस समय इस ज़िले से दो हज़ार से अधिक कैद हुए। कई जगहों पर गोलियाँ चलीं और अट्ठासी (88) नरवीर शहीद हुए। श्री लक्ष्मण नायक को फाँसी के तख़्ते पर चढ़ना पड़ा। स्वतंत्रता की वृत्ति को ध्वंस करने के लिए पुलिस ने गाँव गाँव के चरखे भी जला दिये।

इन दो आंदोलनों के बीच इस ज़िले में श्री विश्वनाथ पट्टनायक आ पहुँचे। उनका जन्म गंजाम ज़िले में किसी गाँव में

हुआ था, यह लोग भूल गये हैं। श्री गोपबाबू के बरी आश्रम से ग्रामसेवा की तालीम लेकर गुणपुर तालुका के कुर्जेद्री गाँव में उन्होंने अपना आश्रम शुरू किया। विश्वनाथ भाई का चेहरा तथा रहन-सहन ऐसा है कि आदिवासियों के साथ हू-ब-हू एक हो जायँ, हृदय में करुणा का अनंत निर्झर प्रवाहित, इसलिए सेवा की प्रेरणा का भी अंत नहीं, सेवा करते-करते थकान नहीं। बारह घंटों में पैतालीस मील तय करनेवाली 'एक्सप्रेस' चाल के अधिकारी तथा महीनों तक सिर्फ बैगन या मकई पर गुजारा करने की ताकत रखनेवाले विश्वनाथ भाई के स्पर्श से थोडे ही दिनों में इस इलाके की पूर्व से चली आयी परंपरागत खादी—जो मृतवत् हो चुकी थी—फिर से सजीव हो उठी। तीस-चालीस गाँवों में दो-ढाई हजार स्वावलंबन के चरखे गूंजने लगे। इन गाँवों से शराब का प्रकोप भी मिट गया। कहीं एकाध बूढे, पुराने नशेबाजों ने लुक-छिपकर अपनी आदत जारी रखी होगी, लेकिन समाज जीवन से शराब अपनी जमानों से सुदृढ प्रतिष्ठा खो बैठी। गाँव-गाँव में चलनेवाला शोषण इनकी आँखों से ओझल नहीं रहा। कहीं से भी अन्याय की बू नाक को लगते ही विश्वनाथ भाई पहाड जंगल लांघकर वहाँ पहुँचकर पीड़ित को ढाढस बँधाने लगते, अन्याय के प्रतिकार के लिए कुछ भी उठा नहीं रखते। इससे थोड़े ही दिनों में पचीस-तीस कोस की त्रीज्या के अन्दर गभीरतम वन में छिपे हुए छोटे-छोटे गाँव के

लोग भी जान गये है कि भगवान ने हमारी प्रार्थना सुनी है और हमारे दुख मिटाने के लिए 'आज्ञा' को भेज दिया है। किसी भी तरह से हमारे दुख की कहानी उनके कानों तक पहुँचते ही हमें जरूर त्राण मिलेगा। इस तरह विश्वनाथ भाई आदिवासियों के परम श्रद्धा तथा निर्भरता के स्थल, उनके प्राणप्रिय 'आज्ञा' बन गये।

पहले से ही हमने इसका उल्लेख किया है कि यहाँ की अच्छी से अच्छी जमीन बाहर के साहुकारों के हाथों में चली गयी है और गाँव के गाँव आदिवासी-भूमिहीन मजदूर बन गये हैं। 'आज्ञा' ने इस प्रक्रिया को आँखों के सामने निर्मम सातत्य के साथ चलते हुए देखा और आख़िर उनसे रहा नहीं गया, उन्होंने इसके खिलाफ लड़ाई छेड दी।

आदिवासियों को ज़मीन का अधिकार दिलवाने के लिए 1951 में एक भूमत्याग्रह आदोलन इनके मार्गदर्शन में शुरू हुआ; जिसमें इनके सारे धुन के पक्के साथी भी शामिल हुए। इस आदोलन के फलस्वरूप सरकार की नींद टूटी और आदिवासी किसान के हितों की रक्षा के लिए कानून बना और एक ख़ास अफ़सर को इस समस्या के निबटारे के लिए भेजा गया। इनके द्वारा कई गरीब किसानों को अपनी खोई हुई जमीन वापिस मिली। लेकिन आज्ञा तथा उनके साथियों ने शीघ्र ही अनुभव किया कि क़ानून कितना भी अनुकूल क्यों न हो और अधिकारी भी कितनी ही सहानुभूति रखनेवाले क्यों न हों,

आज की शासन व्यवस्था के जरिये गरीबों को न्याय दिलाना तथा ख़ास करके व्यापक रूप से चलनेवाले सामाजिक अन्याय का प्रतिकार अशक्य-सी बात है।

इसके दरमयान भूदान-यज्ञ आंदोलन का प्रवाह उडीसा में आ पहुँचा था। और श्री गोपबाबू तथा रमादेवीजी ने भूदान पद-यात्रा शुरू कर दी थी। दूसरे जिलों में भी कार्यकर्ता काम में जुट गये थे। कोरापुट के कार्यकर्त्ताओं को भी भूदान का विचार जंच गया और वे शीघ्र ही भूदान में कूद पडे।

मंगरोठ और मानपुर से कोरापुट को प्रेरणा मिली और वहाँ कार्यकर्ताओं ने ग्रामदान पर शुरू से ही जोर लगाया। फलतः 1953 के सितंबर 12 तारीख को कोरापुट का पहला ग्रामदान गोबरपल्ली मिला। यह कंधों का गाँव है। इसकी आबादी 159 तथा कुल जमीन का रकबा 177 एकड है। आदिवासियों के गाँव में अकसर एक ही जाति के लोग होते हैं और उनमें सामाजिक संघति अधिक होती है। लेकिन यह बात नहीं है कि सिर्फ इस प्रकार के एक जातिवाले गाँव ही ग्रामदान में मिले हैं। ग्रामदान की प्रथमावस्था में ही कोरापुट में मिश्रित आबाद गाँव मिले थे। चंद्रपुर उस प्रकार का एक गाँव है जहाँ के निवासी पाइक तथा कंध है।

बाहर के लोगों में यह एक ख्याल बंध गया है कि आदिवासियों में जमीन के लिए आकर्षण कम है, इसीलिए उनमें

ग्रामदान आसानी से फैल सका। उनमें से कई गिरोह पहाड़ों पर घूमते-फिरते, खेती करते दिखायी देते हैं इससे उस ख़्याल को बल मिलता है। लेकिन यह ख़्याल सही नहीं है। पोडु खेती के कारणों की चर्चा हमने पिछले अध्याय में की है। ज़मीन के लिए चाह उनमें दूसरों से कम नहीं है। आज उनके पास ज़मीन के सिवा आजीविका का दूसरा कोई साधन नहीं रहा—इसलिए यह चाह अधिक तीव्र हो गयी है। हाँ, ज़मीन के प्रति उनकी तथा हमारी दृष्टि में कुछ मूलभूत भिन्नताएँ हैं। ज़मीन को खेती के साधन के रूप में न देखकर संपत्ति संग्रह के साधन के रूप में देखने की दृष्टि उनमें पैदा नहीं हुई थी। इसलिए किसीको किसी खेत की ज़रूरत न रही तो वह उसे दूसरे के उपयोग के लिए छोड़ देता था। उसको शोषण का माध्यम बनाने की कल्पना उसके दिमाग़ में आती ही नहीं थी।

थोड़े ही दिन पहले यहाँ के गाँवों में यह व्यवस्था प्रचलित थी कि—हर साल एक निश्चित दिन होता। जिसको ज़मीन की ज़रूरत होती थी वह उस दिन आकर गाँव के मुखिया से ज़मीन मांगता और जिसे जमीन लौटाना हो वह उस दिन लौटा भी सकता था। ये सब कारण ग्रामदान के लिए अनुकूल थे, लेकिन सबसे बड़ी अनुकूलता तो राष्ट्रीय सत्याग्रह आंदोलन के निमित्त से आयी हुई जागृति थी।

ऊपर से वर्षा, नीचे एकाग्र जनता

इन सब कारणों के उपरांत विनोबाजी का अदृश्य प्रभाव तथा 'आज्ञा' की प्रेम-शक्ति काम करती गयी और कोरापुट में ग्रामदान का तांता बंध गया। जब 26 जनवरी 1955 को विनोबाजी उत्कल की भूमि पर पधारे तब तक इस ज़िले से 26 ग्रामदान मिल गये थे।

उधर उत्कल की पूर्वी सरहद पर बालेश्वर तथा मयूरभंज ज़िलों में भी आंदोलन ज़ोर पकड़ा। बालेश्वर में पहले की राष्ट्रीय आंदोलन की पूंजी थी और निष्ठावन कार्यकर्ता काम में जुट गये तो बालेश्वर तथा उससे सटे हुए मयूरभंज ज़िले के कुछ हिस्सों में ग्रामदान मिलने लगे जिनकी संख्या 26 जनवरी 55 को क्रमशः 7 और 12 थीं। इस तरह उत्कल में कुल ग्रामदानों की संख्या 46 हो गयी।

इसीसे प्रभावित होकर विनोबाजी ने उत्कल में आने से पहले से ही यह संदेश भेज दिया था कि "उत्कल में भूमि क्रांति की महानदी बहेगी, इसमें संदेह नहीं।" उन्होंने यह भी लिखा था—"बिहार में पूर्ण भूदान, उत्कल में भूमिक्रांति अन्य प्रांतों में मुक्त विहार।"

6. पद-यात्रा के वे दिन !

उत्कल में पधारते ही विनोबाजी ने भूमि क्रांति का आवाहन लोगों के सामने रखा। और समुद्र तट के जिलों में उनकी यात्रा के दरमयान उन जिलों से फुटकर ग्रामदान मिलते गये। उस प्रकार बालेश्वर में एक, केउंझर में दो, तथा कटक और पुरी में एक-एक ग्रामदान मिले। इन गाँव के लोग विनोबाजी से मिले और उनसे अपनी शंकाओं का समाधान कराया। लेकिन विनोबाजी की निगाह कोरापुट पर गड़ी हुई थी और शीघ्रातिशीघ्र वहाँ पहुँचने का कार्यक्रम बनाया गया था। उनसे प्रेरणा लेकर वहाँ के कार्यकर्ता अधिक से अधिक ग्रामदान प्राप्त करने में जुट गये थे और वहाँ की हवा पास के गंजाम जिले के आदिवासी प्रदेश 'एजेनूसी' में भी फैल गयी। इस गंजाम एजेन्सी कोरापुट से भी अधिक अंधेरे में था। स्वतंत्रता के बाद भी वहाँ सरकार की तरफ से बाकायदा वेठ और बेगार चलाते थे। गोपबाबू की पदयात्रा के समय यहाँ की सारी दुःखद स्थिति प्रकाश में आयी और इस स्थिति के प्रतिकार के लिये श्री मालती देवी ने जी तोड कोशिश शुरू कर दी और वहाँ रचनात्मक काम के कुछ केंद्र शुरू हो गये। इस तरह वहाँ के जीवन में नवीन जागृति आयी और विनोबाजी के वहाँ पहुँचने तक गंजाम एजेंसी से भी 12 ग्रामदान मिल गये।

इसी ज़िले में 19 मई '55 को विनोबाजी के हाथ से ग्रामदान का पहला बंटवारा आकिलि नाम के गाँव का हुआ, जिस अवसर पर विनोबाजी ने ग्रामदान को 'अहिंसा का अणुबम' नाम दिया। उन्होंने कहा—"जैसे अणुबम के एक-एक प्रयोग से दुनियाँ का वातावरण अशुद्ध होता है, उसमें ज़हर फैलता है, वैसे ही एक-एक ग्रामदान उस वातावरण को शुद्ध करते हैं।" गंजाम में पहले से मिले हुए ग्रामदानों का बंटवारा विनोबाजी के हाथों से हुआ और नये ग्रामदान भी मिलते गये। ग्रामदानों की हवा बहुत ज़ोरों से फैली।

उधर कोरापुट की संभावनाओं को देखते हुए उत्कल के कार्यकर्ताओं ने यह अनुभव किया कि अपनी सीमित शक्ति को प्रांत भर में तित्तर बित्तर होने देने के बजाय अगर उसको भरसक कोरापुट में ही केंद्रित किया जायगा तो उसका अधिक सफल उपयोग होगा और विनोबाजी की यात्रा का भी पूरा लाभ प्राप्त किया जा सकेगा। इसलिये दूसरे जिलों के अनुभवी कार्यकर्ताओं को कोरापुट में बुलाया गया और काम में अधिक तीव्रता आयी।

29 मई को विनोबाजी कोरापुट के पहले पड़ाव पर पहुँचे और वहाँ उन्हें 79 ग्रामदानों की भेंट मिली। वहाँ उन्होंने घोषित किया कि "हमने अपने मन में इस बात का बड़ा गौरव माना है कि कोरापुट में बहुत गाँवों ने अपनी पूरी ज़मीन दान में दे दी है। कोई साल डेढ़ साल से हम कोरापुट का नाम सुन

रहे हैं कि यहाँ पर जंगलों में जो लोग रहते हैं उन्हें भूदान-यज्ञ की बात जंचती है। हम तो चाहते हैं कि कोरापुट ज़िले में जितने गाँव हैं वे सबके सब भूदान-यज्ञ में मिल जायँ।

"शहरों के लोग केवल अपना सोचते हैं, पड़ोस का नहीं। पड़ोसी को खाने को मिला है या नहीं, उसके घर की हालत क्या है, यह बात कोई पूछता भी नहीं। लेकिन हम देहात के लोग तो प्रेम के लिए इकट्ठा रहते हैं। शहर के लोग एक दूसरे को लूटते हैं। हम देहातवाले भी अगर एक दूसरे को लूटना शुरू कर दें तो हमारी हालत बहुत बुरी हो जायगी। इसलिए हम लोगों को तय करना चाहिए कि अपने गाँव में हम सब मिलकर एक परिवार बनाकर प्रेम से रहेंगे। अपने पराये का भेद मिटा देंगे।" ग्रामदान पर ज़ोर लगाने के लिए प्रांत भर के जो कार्यकर्ता कोरापुट में एकत्रित हुए थे, इन शब्दों से उनमें उत्साह की एक लहर दौड़ गयी। इस ज़िले में जंगल का भाग काफ़ी विस्तृत है और उसके 10,000 वर्गमील के फैलाव की तुलना में सड़कें बहुत कम हैं। इधर बारिश की मौसम भी अपनी आगाहें दे रही थी। बारिश में जंगल को प्रोत्साहन मिलता है और अपने बीच में मनुष्य को अति अनिच्छा से छोड़ा हुआ रास्ता वह फिर से अपने कब्जे में कर लेता है। फिर इस हलके के छोटे-छोटे गाँवों में पदयात्री दल के लिए आश्रय मिलना भी कठिन हो जाता। इसलिए पहले यह तय हुआ था कि

कोरापुट में विनोबाजी की यात्रा छह हफ्तों की रहेगी, जिसके बाद वे उत्तर के कम कष्टप्रद ज़िलों में प्रवेश करेंगे। लेकिन थोड़े दिनों के अनुभव के बाद ही विनोबाजी ने इस ज़िले की संभावनाओं को भांप लिया और दूसरे ज़िलों के बजाय इसी ज़िले में बाकी का समय देना तय किया। फलस्वरूप '55 की इस बारिश की चौमाही में भारत के इस शायद कठिनतम प्रदेश में भूदान आंदोलन का एक अत्यंत ही स्फूर्तिदायक अध्याय रचा गया।

ऊपर से बारिश टपक रही है, ठंडी हवा काँटों की तरह चुभ रही है और नीचे सैकड़ों की जनता, विनोबाजी की वाग्धारा एकाग्रचित्त से पान कर रही है। माताएँ बच्चों को गोद में लेकर इस इतमीनान से बैठी है मानों अपने चूल्हे के पास बैठी हों। इस प्रकार का दृश्य उन दिनों कोरापुट में हर हमेशा देखने को मिलता था। सुबह जब घड़ी के काँटे यात्रा का समय सूचित करते तब पचास मील का तूफ़ान चलता हो, पड़ाव का छप्पर भेदकर सिर पर पानी टपकता हो या मूसलधार वर्षा सभा-स्थल को कीचड़ और पानी से सना हुआ धान के खेत का रूप ही क्यों न दे देता हो, फिर भी विनोबाजी की यात्रा जारी ही रहती, प्रार्थना सभाएँ जारी रहतीं। एक दिन के लिये भी सातत्य में भंग नहीं हुआ, कार्यक्रम स्थगित नहीं हुआ। इसका असर कार्यकर्ताओं पर पड़ा। घने जंगल, बारिश, मलेरिया

और जंगली जानवरों की परवाह न करते हुए उन्होंने गाँव-गाँव घूमकर ग्रामदान का संदेश ज़िलों के कोने-कोने में पहुँचाया। इस पराक्रम में शायद सबसे बड़ी लड़ाई मलेरिया के साथ रही। इन महीनों में कम से कम एक बार मलेरिया का शिकार न बननेवाले कार्यकर्ता बिरले ही रहे। विनोबा यात्रीदल के ही 23 व्यक्ति कोरापुट प्रवेश के पहले हफ़्ते में बुख़ार से पीड़ित हुए। इसका ज़िक्र करते हुए विनोबाजी ने कहा था—

"कार्यकर्ता बीमार भी काफ़ी पड़े, लेकिन तो भी वे थोड़े दिन आराम लेकर फिर से काम में जुट जाते हैं। किसी भी कार्यकर्ता ने हार नहीं खायी। बाबा बारिश में घूमता है इसका असर उनके दिल पर हुआ है। लेकिन बाबा के लिये तो हर तरह की सहूलियतें होती हैं जो इन कार्यकर्ताओं के लिये नहीं होती।

"....हमने यह भी देखा कि ये कार्यकर्ता बीमार पड़ते हैं तो डाक्टर लोग बहुत ज़्यादा ध्यान देकर इनकी सेवा करते हैं। वे सोचते हैं कि इन्हीं की सेवा के ज़रिये हम भूदान की सेवा कर रहे हैं। उन सब डाक्टरों को भी मैं बहुत धन्यवाद देता हूँ।"

इस प्रकार के प्रयत्नों के कारण आसमान के बारिश के साथ प्रतिस्पर्धा करती हुई ग्रामदान की वर्षा भी बरसने लगी। यात्रा के पहिले महीने के अंत में ग्रामदानों की संख्या

125 तक पहुँची। दूसरे महीने में 207 हुई और जब पहली अक्तूबर के दिन विनोबाजी उडीसा छोडकर आन्ध्र भूमि पर पधारे तब तक कोरापुट के ग्रामदान 605 तथा सारे प्रांत की संख्या 812 तक पहुँच गयी।

विनोबाजी के कोरापुट छोडने के बाद भी नये ग्रामदान मिलना जारी ही रहा। इस तरह अप्रैल के अन्त तक कोरापुट में 158 ग्रामदान नये मिले हैं। दूसरे जिलों में भी नये ग्रामदान मिलते गये हैं जिसके आकडे नीचे दिये जा रहे हैं। दो-तीन महीनों से जमीन के बटवारे पर पूरा ध्यान दिये जाने के कारण नये संग्रह के लिए कोशिश नहीं की गयी और जो नये मिले हैं सहज ही मिल गये है।

अप्रैल 1956 तक के ग्रामदानों के आँकडे

कोरापुट	763	बालेश्वर	159
गंजाम	50	मयूरभंज	62
संबलपुर	5	केउंझर	2
कटक	1	ढेंकानाल	1
पुरी	1	सुंदरगड	3
		कुल	1047

इनमें से कोरापुट जिले के गावों के बारे में ही विस्तारित जानकारी मिल सकी है। इससे मालूम होता है कि कोरापुट में

इन 763 गाँवों की जनसंख्या 1,06,320 याने ज़िले के कुल जनसंख्या का बारहवाँ हिस्सा है। गाँवों की संख्या ज़िले के कुल ग्रामसंख्या का आठवाँ हिस्सा है।

इन गाँवों की ज़मीन का सच्चा प्रमाण मिलना ज़रा मुश्किल है, क्योंकि इनकी सबकी सर्वे नहीं हुई है। इसलिए दान-पत्र पर भरा गया परिमाण अक्सर एक अंदाज़ी आँकड़ा ही होता है। अब तक 251 सर्वे किये गये गाँव का हिसाब मिल सका है। इनमें कुल ज़मीन का रकबा 1,09,996 एकड़ है। इसमें से जेरकाश्त ज़मीन 27,672 एकड़, खेती योग्य पड़ती 25,683 एकड़ तथा खेती के अयोग्य पड़ती 41,478 एकड़ है। इसके अलावा आम उपयोग की ज़मीन 18,713 एकड़ तथा सरकारी ज़मीन 449 एकड़ भी है। इसपर हम हिसाब लगा सकते हैं कि 763 गाँव की कुल ज़मीन 3 लाख एकड़ से अधिक होगी, जो ज़िले के बीसवाँ हिस्से के बराबर होगा। इन 251 गाँवों में कुल जोतों की संख्या 34,640 है, जिसपर से हम हिसाब लगा सकते हैं कि एक एक जोत का औसत रकबा आठ एकड़ होगा। इनमें फ़ी व्यक्ति जेरकाश्त ज़मीन का प्रमाण 0·78 एकड़ है। खेती योग्य पड़ती भी फ़ी व्यक्ति करीब 0·75 एकड़ तक आयेगी।

लेकिन इस प्रकार औसत के आंकड़े अक्सर भुलावे में डालनेवाले होते हैं। इनमें कई गाँव ऐसे हैं जिनमें फ़ी व्यक्ति औसत खेती योग्य ज़मीन चार या पाँच एकड़ होगी, फिर दूसरे

छोर पर पहाड़ों के बीच बसे हुए ऐसे गाँव भी हैं, जहाँ की खेती के लायक ज़मीन फ़ी व्यक्ति के लिये पाव एकड़ से ज़्यादा नहीं होगी। ग्रामदान में आये हुए ऐसे कुछ गाँवों के आर्थिक पुनर्यसाहत की समस्या काफ़ी पेचीदा है और यह कार्यकर्ताओं की नियोजन-शक्ति को परखकर ही रहेगी।

7. भावनाओं के दर्शन

कोरापुट में भी ग्रामदानों का वितरण विनोबाजी के ही हाथों से शुरू हुआ। यह वितरण दरअसल खुद गाँववाले ही कार्यकर्ताओं की मदद से कर लेते थे और विनोबाजी के हाथों से आदान-पत्र और आशीर्वाद प्राप्त करने के लिये आ जाते थे।

बंटवारे के बारे में सिद्धांत तो यही था कि गाँव के हर परिवार को उसके सदस्यों की संख्या के अनुसार ज़मीन का बराबर हिस्सा मिले। पाँच मनुष्यवाले परिवार को पाँच तो सात एकड़वाले परिवार को सात एकड़ मिले, और इसमें ज़मीन के किस्मों का भी ख्याल रखा जाय, जैसे कि हर परिवार को तरी और खुश्क दोनों प्रकार की ज़मीन का उचित हिस्सा मिले।

कई गाँव के लोग इस तरह बिलकुल बराबरी के हिसाब से बाँट लेने के लिये तैयार हो गये। दूसरे कुछ गाँव में कुछ कमीबेश रहा, ख़ास करके उन गाँवों में जहाँ एकाध बड़े-बड़े मालिक थे। बहुत अधिक ज़मीन की जगह बिलकुल थोड़ी ही-सी ज़मीन मिलने के कारण उनको ज़्यादा तकलीफ़ न हो इस लिहाज से गाँववालों ने ऐसे लोगों को कुछ अधिक ज़मीन देना तय किया। कहीं इस प्रकार के बड़े मालिक ग्रामदान में शामिल होने के लिये हिचाकिचाते थे तो उनको सम्मत करने के लिये भी

उनके हिस्सों में कुछ अधिक ज़मीन देने के लिये गाँववाले तैयार हो जाते थे। सारे निर्णय सर्वसम्मति से ही होते थे। इन गाँवों के इस प्रकार के बड़े मालिक, बड़े होते हुए भी प्रत्यक्ष शरीर-श्रम से अलग रहनेवाले बेकार वर्ग के नहीं थे। वे अपनी खेतों में थोड़ा बहुत मेहनत करने के आदी ही थे। उनके जीवन शरीर-श्रम पर खड़े होने के कारण इस प्रकार की थोड़ी-सी रियायत से ही उनको समाधान हो जाता था। जहाँ ज़मीन पर मेहनत न करनेवाले मध्यम वर्ग के लोग हों वैसे गाँव ग्रामदान में अब तक नहीं मिले हैं। ऐसे लोगों के लिये विनोबा जी ने आश्वासन दे रखा है कि—"आप प्रेम से ग्रामदान में योग देंगे तो गाँववाले भी आपके लिये जान दे देने को तैयार हो जायँगे। वे प्रेम से आपकी ज़मीन पाँच दस सालों के लिये जोत देंगे। तब तक आप अपने लड़के और पोतों को खेती में मेहनत करने के लिये तैयार कर लेना चाहिये।"

ऐसे लोग भी अपना भय छोड़कर ग्रामदान करेंगे तो इसमें शक नहीं कि वहाँ के गरीब लोग प्रेम से उनको निभा लेंगे। यहाँ के वितरण की घटनाओं से इस विश्वास को बल मिलता है।

लोभ और त्याग में, श्रद्धा और शंका में, संकीर्ण स्वार्थ और समाज हित में जो संग्राम इन ग्रामवासियों के हृदय में चलता होगा, उसका आखरी निबटारा ग्राम-सभा की इसी बैठक में हो जाया करता था। फिर जब विनोबाजी की प्रार्थना-सभा में हर

गृहस्थ के नाम के साथ उसके पास पहले कितनी ज़मीन थी और अब कितनी मिली इसका ब्योरा पढ़कर सुनाया जाता था, उसको तिलक लगाया जाता था और जयघोषों के बीच वह विनोबाजी को प्रणाम करके आदान-पत्र ले जाता था। तब इस सीधे-सादे समारोह की ओट में कितना बड़ा समाज-परिवर्तन का चित्र छिपा हुआ है, इसका ख्याल हर किसीको तुरंत नहीं होता था। कल जिसको पचास एकड़ थे आज वह सिर्फ़ 10 एकड़ ही जोत पायेगा, और जिसको ज़मीन पर एक लकीर का भी हक नहीं था उसे बारह एकड़ मिल गये। फिर भी दोनों समान प्रसन्नता से आकर अपना-अपना आदान-पत्र ले जाते हैं, इतनी सारी ज़मीन चली गयी, इसके लिये चेहरे पर शिकन तक नहीं। सारपाड्ड के नरसिंहुलु को ले लीजिये। इनको 24 एकड़ ज़मीन थी, लेकिन बंटवारे में मिले साढ़े तीन एकड़। उतना ही उन्होंने भगवान का प्रसाद समझकर ले लिया और भूमिक्रांति की वार्ता फैलाने के अपने काम में जुटे रहे। इनके गाँव के आस-पास के 10-12 गाँवों के ग्रामदान भी इनके प्रयत्नों से मिले थे और उनका बंटवारा भी उन्होंने पूरा किया। इस तरह पेद्दा वालाड़ा के सिदारा-पुनाराप, जिन्होंने साढ़ एकड़ के बदले पाँच एकड़ लिये; दिउड़ी गुड़ा के काड़ाका हाकिन्ना, जिन्हें तीस एकड़ के बदले ग्यारह एकड़ मिले, तला गाँव के मुदीनायक जिन्होंने 60 में से 50 एकड़ हँसते-हँसते छोड़ दिये, और इस प्रकार के सैकड़ों दूसरों के नाम लिये जा

सकते हैं। इनमें से हरेक की कहानी त्याग, श्रद्धा तथा समाज-निष्ठा की एक-एक अद्भुत प्रेरणापूर्ण गाथा है।

एक पडाव पर बाहर के कुछ कार्यकर्ता समग्रदान गावों के निरीक्षण के लिये गये थे। गाँववाले के हृदय के भाव जानने के लिये उन्होंने एक गाँव के कुछ बडे मालिकों से कहा—"आप लोगों ने इस तरह सारी जमीन क्यों दे दी? इससे तो आपको आगे चलकर काफी तकलीफ होगी। थोडी जमीन पर निबाहना आपके लिये कठिन होगा।" उन लोगों ने जवाब दिया—"भगवान ने सिर्फ आपको नहीं; हमको भी कुछ अक़्ल दिया है, धर्म विचार दिया है। हमने जो कुछ किया है गाँव की भलाई के लिये जान-बूझकर ही किया है।"

ऐसी बात नहीं कि ग्रामदान की प्रगति अप्रतिहत सीधी गति में ही होती गयी। आदोलन का फैलाव जैसे-जैसे बढता गया वैसे कुछ विरोध भी प्रकट हुआ। कुछ प्रमुख राजनीतिक नेताओं ने भूदान-यज्ञ के विरोध में अपना अभिप्राय प्रकट किया और इससे इधर कोरापुट में कुछ ऐसे लोगों को एक सहारा मिल गया, जो मानते थे कि भूदान और ग्रामदान से उनके हित को नुकसान पहुँचेगा। इन्होंने गाँव-गाँव घूमकर लोगों को ग्रामदान के विरुद्ध भडकाना शुरू किया, कई प्रकार के झूठे अफवाह फैलाये, भय दिखाये, जिससे प्रभावित होकर दस बारह गावों के लोगों ने अपने ग्रामदान वापस ले लिये। इस संबंध में विनोबाजी

कितना मार्दव है, धूपकाल में पहाड़ों पर हरियाली का ही दर्शन होता है, रूक्षता नहीं और लोगों का स्वभाव भी वैसा ही है। चेहरे पर कैसा तेज है, जरा भी दीनता नही। बातें मान लेने के लिए कितना उत्सुक रहते हैं।"

कुछ मित्रों ने उनको यह सूचना भी दी थी कि—इतने ग्रामदान काफ़ी नहीं हो गये क्या? और कहाँ तक लोभ बढ़ाते रहेंगे? अब इन गाँवों को लेकर बैठ जाना चाहिये और ग्रामराज का नमूना दुनिया के सामने पेश करना चाहिये।

कुछ कार्यकर्ताओं के मन में यह भी विचार आता था कि इतने गाँव की ज़िम्मेवारी बहुत बड़ी है। और जहाँ तक इनकी पुनर्रचना नहीं होती तब तक नये ग्रामदान प्राप्त करना बंद ही नही रखना चाहिये क्या?

इसपर विवेचन करते हुए विनोबा जी ने यह विचार कार्यकर्ताओं के सामने प्रस्तुत किया कि जैसे स्वराज्य के बाद हम देश को ठीक ढंग से संगठित करने में असफल हुये, हममें उतनी रचना-शक्ति का अभाव रहा है, इसी वजह से स्वराज्य की प्राप्ति निष्फल नहीं माना जायगा, या ऐसी संगठन-शक्ति के अभाव को देखते हुए भी स्वराज्य के लिये प्रयत्न को गलत नहीं माना जायगा, वैसे ही ज़मीन में खानगी मालकियत का निर्मूलन ही एक ऐसा ध्येय है जिसको इतिहास में स्वतंत्र स्थान होगा। इसलिए नवनिर्माण नहीं हो पायेगा, इस शंका से इस

हारपाडु के नरसिंहुलु,—चौबीस एकड़ देकर साढ़े तीन लिये।

विचार का प्रचार और ग्रामदानों की प्राप्ति को बंद रखना सर्वथा अनुचित है।

सारे भारत में जो भूमिक्रांति का अलख जगाना बाकी है, फिर इस प्रजासूय यज्ञ का अश्व कैसे एक जगह रुक सकता था! अपने बारे में उन्होंने कहा—"जब किसी विचार का उदय होता है तो वह विचार मनुष्य को चलाता है, घुमाता है, प्रेरणा देता है, स्वस्थ नहीं बैठने देता। चारों ओर व्यापक प्रचार हुए बग़ैर उसका समाधान नहीं होता।

"जिस किसीको एक चीज का अनुभव है, उसे एक जगह रहने की मनाही हिन्दू धर्म की जीवन-पद्धति में हैं। जब तक अनुभव नहीं होता, प्रयोग नहीं होते, चित्त में आसक्ति नहीं होती, तब तक एक स्थान में रहकर काम किया जा सकता है। लेकिन उसके बाद मनुष्य को सतत घूमना चाहिए। ....स्थितप्रज्ञ के, ज्ञानी के, भक्त के लक्षणों में 'अनिकेतः स्थिरमति.' कहा है। स्थितप्रज्ञ के लक्षणों में 'पुमांश्चरति निस्पृह' याने 'जो रोज घूमता रहता है' यह कहा है। इसका अर्थ यह नहीं कि स्थितप्रज्ञ को घुमते रहना ही चाहिए, लेकिन एक संकेत सूचित किया है कि मनुष्य के जीवन में घूमना भी एक अंग है। उससे उसे अनासक्ति का अनुभव होता है और समाज में ज्ञान का प्रचार होता है। इसलिए यद्यपि इस ज़िले में हमें काफी उत्साह मिला है, हमारा मन भी स्थिर हुआ है, तो भी इसे छोड़कर जाना हमारा कर्तव्य है।"

विनोबाजी खुद बैठ नहीं सकते थे, लेकिन इसलिए निर्माण का काम रुकनेवाला नहीं था। उडीसा में पहले से ही नवजीवन मंडल नाम की एक संस्था श्री मालतीदेवी चौधरी के संचालन में आदिवासियों में रचनात्मक काम करती आ रही है। उस संस्था में यहाँ के दूसरे प्रमुख रचनात्मक कार्यकर्ता भी हैं। नव-निर्माण काम की जिम्मेवारी इसी संस्था को सौंपने का निश्चय हुआ। विनोबाजी के सूचनानुसार इस संस्था के उद्देश्य और नियमों में कुछ परिवर्तन किये गये और आदिवासियों के अलावा, आदिवासी प्रधान प्रदेशों में बसनेवाली दूसरी जातियों की सेवा तथा शासनमुक्त और शोषणहीन समाज की स्थापना उसके उद्देश्य बने।

उधर अखिल भारत सर्व सेवा संघ भी इस मामले में अपनी जिम्मेवारी महसूस की। उसकी ओर से हिन्दुस्तान के प्रख्यात जनसेवक श्री अण्णासाहेब सहस्रबुद्धे भी निर्माण काम के संचालन के लिए आ पहुँचे और उनकी अध्यक्षता में नवजीवन मंडल की एक निर्माण समिति इस काम के मार्गदर्शन के लिए बनायी।

जिस रचनात्मक कामों का संगोपन हम इस देश में विगत तीस सालों से अति लगन के साथ करते आये हैं, उनके फूलने-फलने के लिए इस जागृत जनशक्ति के अधिष्ठान एक अत्यंत अनुकूल क्षेत्र हैं, इसमें कोई संदेह नहीं। जब हम इसकी संभावनाओं की कल्पना अपने मानस में करते हैं तो एक अद्भुत

और रोमांचकर आनंद का अनुभव होता है। इस काम में सबसे बड़ी पूंजी यहाँ की जागृति ही है; और इसको बनाये रखना तथा आगे बढ़ाना ही हमारा सर्वप्रथम कर्तव्य है, यह चेतावनी विनोबाजी ने कार्यकर्ताओं को बारंबार दी है। इस संबन्ध में उनकी यह सूचना थी कि ग्रामदान संग्रह का काम जैसे एक आंदोलन के रूप में चला, वैसे निर्माण काम का स्वरूप भी एक आंदोलन का ही रहे। उसमें के एक-एक विषयों का प्रसार, एक-एक लहर की तरह सारे क्षेत्र में दौड़ जाय। बैल बाँटने का काम हो तो एक आध महीनों में वे सारे क्षेत्र में बंट जाय। दूकानें शुरू करनी हों तो वे भी उसी तरह सब जगह एक साथ शुरू हो जायँ, जिससे कि इन कामों को एक आंदोलन का स्वरूप मिल जाय।

यहाँ की परिस्थिति को देखते हुए उन्होंने कामों की प्रयारिटी के (priority) बारे में कुछ मोटी सूचनाएँ दीं। काम तो हर प्रकार के करने हैं, लेकिन अपनी सीमित शक्ति को देखते हुए उसमें आगे करने के कामों को आगे; और पीछे के कामों को पीछे हाथ में लेना ही समुचित हो सकता है।

इस तरह से पूर्वतन भूमिहीनों को खेती की साधन-सामग्रियाँ मुहय्या करना, व्यापारियों तथा साहुकारों के शोषण से छुटकारा दिलाना, आबपाशी की व्यवस्था तथा खादी, ये चार विषय प्रयारिटी के प्रथम पंक्ति में आते हैं और ग्रामोद्योग, सफ़ाई, और तालीम आदि उसके बाद की पंक्ति में।

विनोबाजी की तीसरी सूचना यह थी कि सारा काम जनशक्ति से ही होना चाहिए। जैसे यह अनुभव नहीं कि ऊपर से लोगों पर बहुत सारे उपकार लादे जा रहे हैं; इसलिए काम का अभिक्रम लोगों में से ही आना चाहिए और कहाँ क्या काम शुरू करना है, यह लोग ही पहले तय करें और हम सिर्फ़ उन्हें उस योजना को कार्यान्वित करने में आवश्यक मार्गदर्शन दें, मददगार के रूप में रहें। इस दृष्टि से भरसक स्थानिक कार्यकर्ताओं के ज़रिये ही काम करने की नीति रहे।

स्वतंत्र जन शक्ति जागृत करने और शासन-मुक्त समाज कायम करने की दृष्टि से सारे संगठन और योजनाओं को लोगों के स्वावलंबन-शक्ति पर आधारित करना ही एकमात्र ध्येय हो सकता है। लेकिन इधर केंद्रीय और प्रांतीय सरकारें तथा गाँधी निधि आदि संस्थाएँ हर तरह से मदद करने के लिए उत्सुक थी। क्या उनकी सहायता लेनी चाहिए या उससे अपने को मुक्त रखना चाहिए? क्या सरकारी मदद के कारण स्वतंत्र जनशक्ति के विकास को धक्का नही पहुँचेगा? ये सवाल सामने थे।

विनोबाजी के सूचनानुसार इस काम में सरकार से और बाहर की दूसरी संस्थाओं से मदद लेना उचित ही समझा गया। जिन गाँव में किसी प्रकार की एकता नहीं है और जहाँ की सारी विकास-योजनाओं का लाभ थोड़े से संपन्न लोगों को ही अधिकतर मिलता है, वहाँ भी सरकार लाखों करोड़ों खर्च करती

है, तो फिर जिन गाँवों में ग्रामदान जैसी महान क्रांति हुई, जहाँ से स्वार्थ के संघर्ष मिट गये और जहाँ लोगों में अभूतपूर्व ऐक्य की स्थापना हुई क्या उनको सरकार की सेवा से वंचित रखा जाय? वहाँ तो सरकार को ज़्यादा ख़र्च करना चाहिए। विनोबाजी ने यह अभिप्राय ज़ाहिर किया कि ग्रामदानी गाँवों को सरकार को ख़ास सहूलियतें और सहायताएँ देनी चाहिए। और अपनी यह मंशा घोषित भी कर देना चाहिए, जिससे कि लोगों को ग्रामदान के लिए प्रोत्साहन मिले। उन्होंने यह भी कहा कि अगर सरकार ग्रामदानी गाँवों की लगान माफ़ कर दे और इससे प्रेरित होकर लोग ग्रामदान करें तो यह अच्छा ही होगा।

लेकिन बाहर की सहायता से काम शुरू करते हुए भी आख़िर हमें स्वावलंबन और शासन-मुक्ति की ओर बढ़ना ही है। इसलिए उन्होंने साथ-साथ संपत्तिदान आंदोलन को ज़ोरदार करने का आग्रह रखा। उन्होंने कहा—"मै अगर यहाँ और अधिक दिन ठहरता तो ग्रामदान संग्रह मुलतवी करके संपत्तिदान संग्रह पर ज़ोर लगाता।" उनका यह आग्रह था कि कार्यकर्तागण अपने पोषण के लिए बाहर की सहायता से मुक्त होकर स्थानिक संपत्तिदान पर आधार रखें, कम से कम इतना काम तो शीघ्राति-शीघ्र होना चाहिए। उनकी उत्कल यात्रा के आख़िरी सप्ताह में कोरापुट में संपत्तिदान संग्रह का काम शुरू भी कर दिया गया

और एक जन आंदोलन के तौर पर हर घर से संपत्तिदान प्राप्त करने की कोशिश की गयी। जिसके फलस्वरूप थोड़े ही दिनों में 2,000 से अधिक दाताओं से सालाना बीस हज़ार से अधिक रुपयों के दानपत्र मिले। इसमें यह एक खूबी थी कि इन दाताओं में सैकड़ों ऐसे भूमिहीन मज़दूर हैं जिन्होंने साल में कुछ दिनों की मज़दूरी ही दान में देने का संकल्प किया है। इसमें कोई शक नहीं है कि यह आंदोलन भूदान से भी अधिक व्यापक स्वरूप धारण कर सकता है और जैसे विनोबाजी ने अपेक्षा रखी है, हर मनुष्य से *संपत्तिदान प्राप्त किया जा सकता* है। फिलहाल ग्रामदानों के बँटवारे पर अधिक ज़ोर होने का कारण संपत्तिदान का काम रुका रहा है। लेकिन अगले बारिश के दिनों में उसपर पूरा ज़ोर लगाने का विचार है।

9. निर्माण का संगठन

विनोबाजी के उडीसा छोडने के बाद यथासंभव शीघ्र ही नवनिर्माण का काम हाथ में लिया गया। अण्णा साहेब स्वयं आकर कोरापुट में बस गये और उनकी देखभाल में यहाँ का अन्यतम महकुमा शहर रायगडा में सर्व सेवा-संघ की एक शाखा चालू हो गयी। पहले सोलह महीनों के लिए एक योजना और सत्रह लाख रुपयों का बजट बनाया गया।

कोरापुट, गंजाम, बालेश्वर और मयूरभंज इन चार जिलों के 800 से अधिक ग्रामदानी गाँवों को काम की सहूलियत के लिए छः सघन क्षेत्र में बांट दिया गया। इनमें चार क्षेत्र कोरापुट में एक गंजाम में और एक बालेश्वर मयूरभंज विभाग में हैं। हर सघन क्षेत्र को सुभीता के अनुसार कर्म केंद्रों में बाँटा गया है। केन्द्र इस प्रकार बनाये गये कि जैसे हर एक के तीन चार मील की त्रीज्या के अंदर दस पंद्रह ग्रामदान गाँव आ जायँ। इस तरह कोरापुट के चार क्षेत्रों में 27, गंजाम में 8 और बालेश्वर में 9 केन्द्र निश्चित किये गये हैं। इन केन्द्रो में से हरेक के मातहत एक हजार से बारह सौ तक की जन-संख्या रखनेवाले दो ढाई सौ परिवार आएँगे।

योजना ऐसी रही है कि हर एक केन्द्र में सामान्यत. दो भाई और एक बहन कार्यकर्ता रहेंगे, जो केन्द्र के अंतर्गत 15-20

गाँवों के साथ प्रत्यक्ष संपर्क रखेंगे और काम का संचालन करेंगे। कोरापुट के क्षेत्र में कुल मिलाकर 180 कार्यकर्ता भाई-बहन काम कर रहे हैं। गंजाम के क्षेत्र में करीब 25 तथा बालेश्वर-मयूरभंज में 37 कार्यकर्ता हैं। इनमें से अधिकतर भाई भूदान के कार्यकर्ता हैं। खास निर्माण की जिम्मेवारी लेनेवाले भाइयों की संख्या 30 होगी। जो 45 बहनें हैं वे निर्माण का ही काम मुख्यतया करती हैं। लेकिन सब कार्यकर्ताओं में परस्पर सहयोग रहता है और ग्रामदानों का संग्रह, बँटवारा तथा निर्माण के सारे काम मिल-जुलकर परस्पर संबंधित रूप से चलते हैं। कोरापुट के क्षेत्रों में काम करनेवाली बहनें कस्तूरबा निधि की सेविकाएँ हैं। बाकी के सारे बहन और भाई नवजीवन मंडल के संचालन में काम करते हैं।

हर एक केंद्र में सारे क्रियाशीलनों का मध्यबिंदु वहाँ का 'गांधी घर' बनेगा। स्थानिक उपकरणों से मिट्टी, लकड़ी, बाँस और फूस के बने 1800 चौरस फुट के इन मकानों की तैयारी हर एक केन्द्र में शुरू हो गयी है। इनके लिए राज्य सरकार ने अब तक 70,200 रुपये की रकम दी है। इसमें से हर गांधी घर के लिए 2,700 रु की मदद दी जाती है और गाँववाले अपनी मेहनत तथा साधन सामग्री के रूप में कम से कम 900 रुपये भरकर मकान का काम पूरा करते हैं। इन मकानों के बनाने में इन्होंने जिस उत्साह से सम्मिलित रूप से काम किया

वह बहुत ही आनंददायक है। कोरापुट के गाँव में भला ईंटें बनाना क्यों कोई जानता? लेकिन इन गांधी घरों के निमित्त से कई केन्द्रों में स्थानिक लोगों ने ईंटें बनाना सीख लिया है और इस तरह से एक नये उद्योग का प्रवेश इन गाँवों में हुआ है।

इन गांधी घरों में कार्यकर्ताओं का निवास होगा, गाँव के सहकारी भंडार और ग्रामसभा के दफ्तर भी वहीं रहेंगे। गाँव के सामुदायिक कार्यक्रम भी उसीमें चलेंगे, चरखा, करधा, घानी आदि के लिए भी इसी की गोद में स्थान मिलेगा। बच्चे-बूढ़ों की पढ़ाई, दवादारू आदि के जितने नये-नये काम शुरू होते जाएँगे उन सबको इसीके इर्दगिर्द सजाते जायँगे और इस तरह यह गांधी घर यथार्थ में व्यक्त परमात्मा की पूजा का एक मंदिर बनेगा।

पाँच सात केन्द्रों को लेकर बने हरेक क्षेत्र या ज़ोन (zone) में काम की ज़िम्मेवारी एक मुख्य कार्यकर्ता और उनके सहकारियों पर रखा गया है।

10. बँटवारे के अनुभव

निर्माण का काम बाकायदा शुरू हो, इसके लिए यह आवश्यक था कि गावों में ज़मीन का बंटवारा नये सिरे से हो जाय और इस तरह ग्रामदान की भावना साकार रूप ले। विनोबाजी के रहते हुए कुछ गाँवों का बंटवारा हो चुका था; लेकिन वह कागज पर ही था। अलग-अलग व्यक्तियों को उनके हिस्सों में आनेवाले खेतों का पहचान नहीं दिया गया था और इतना काम भी इन सात सौ गाँवों में से मुश्किल से सौ भर में हो पाया था। अब इनमें जमीनों का दखल दिलाना और दूसरे गाँवों का बाकायदा बटवारा शुरू हुआ, तो कई दिक़्तें सामने आयीं। पहले तो इस जिले के कई विस्तृत हिस्सों में जमीन का सर्वे हुआ ही नही हैं और कुछ ऐसे हिस्से हैं जहाँ सर्वे हाल ही में पूरा हुआ है, जिसके कागजात प्राप्त करना कठिन काम है। ऐसे गाँवों में बटवारे के लिए जाते तो फिर पता चलता कि हर रैयत के पट्टों पर जमीन का जितना रकबा उसकी मालिकी का लिखा हुआ है, दर असल उससे किसी के दखल में कम है तो किसीको अधिक है। ऐसे गाँवों की सारी ज़मीन की एक सरसरी सर्वे पहले कर लेने की आवश्यकता रही, लेकिन जहाँ गाँव में यह हालत वहाँ भूदान के कार्यकर्ताओं में सर्वे आदि के

बारे में ज्ञान नदारद! सौ में मुश्किल से पाँच ऐसे होंगे जिनको इस संबंध में कुछ जानकारी हो। बाहर से अनुभवी अमीनों की मदद लेना तय हुआ; लेकिन ऐसे अमीन काफ़ी मात्रा में मिले कहाँ? सरकार को भी जो अपने कई प्रकार की योजनाओं के लिए अमीनों और ओवरसीयरों की सेनाओं की ही ज़रूरत हो रही है! फिर भी सरकारी मूराजस्व विभाग से तथा बाहर से भी कुछ अमीनों की सेवा मिली और सारे कार्यकर्ता दूसरे सारे कामों को भूलकर बंटवारे ही में जुट गये। इसके परिणामस्वरूप अप्रैल के आखिर तक लगभग 400 गाँवों का बंटवारा कोरापुट ज़िले में पूरा हो चुका है। इस वर्षा ऋतु के प्रारंभ तक 75 फ़ी सदी गाँव बंट जाएँगे ऐसी उम्मीद रखी जाती है। गंजाम में 50 में से 21, बालेश्वर में 159 से 93 और मयूरभंज में 62 से 9 गाँव भी अप्रैल के अंत तक बंट चुके थे।

ग्रामदानों के बंटवारे के जो आँकड़े हमें अब तक मिल सके वे नीचे ज़िलेवार दिये जा रहे हैं।

इस पुनर्वितरण के समय कौन-सा खेत पहले किसके कब्ज़े में था इसका कुछ भी ख़्याल न रखा जाय और सारे गाँवों की ज़मीन की एक इकाई मानी जाय और चकबंदी, किस्म आदि का ख़्याल रखते हुए हर एक परिवार को नये सिरे से ज़मीन दे दी जाय, यही बंटवारे का सीधा और सरल तरीक़ा मालूम होता है। लेकिन ऐसा करने के लिए एक-एक गाँव में वास्तव में हफ्तों लग

जानेवाले हैं, कारण इसमें करीव-करीव हर एक क्यारी को प्रत्यक्ष रूप से नापना पड़ेगा। लेकिन हमारे सामने काम है बहुत तथा समय और शक्ति है कम। हो सके, तो एक ही दिन में एक गाँव का काम पूरा हो इस वृत्ति से काम को आगे ढकेलना पड़ता है। इसलिए व्यावहारिक दृष्टि से यही योग्य समझा गया कि पहले जिसके पास जितनी जमीन थी उसीमें से उसको अपना हिस्सा रखने दिया जाय और बाकी की ज़मीन नाप-तौलकर दूसरे को चिन्हित कर दिया जाय। इससे "यह ज़मीन हमारी मालिकी की थी और रही। उतनी ज़मीन हमने दान में दी।" इस प्रकार के कुछ ख़्याल का स्पर्श लोगों के मन में रह जाने की शंका तो है लेकिन निश्चित समय के अंदर सैकड़ों गाँवों का बँटवारा पूरा करने की लिहाज से इतना ख़तरा उठाना ही पड़ता है। गाँवों के बँटवारे के समय हर गाँव में सारे ग्रामवासियों की ग्रामसभा तथा कार्यसंचालन के लिए एक छोटी निर्माण-समिति बनायी जाती है। जमीन का नियोजन तथा निर्माण की जिम्मेवारी इन्हीं समितियों को सौंपी जाती है। हर गाँव में भर सक कुछ ज़मीन सामूहिक खेती के लिए भी रखी जाती है।

ज़िला	वितरित गाँवों की संख्या	कुल परिवार संख्या	कुल जनसंख्या	भूमिहीन परिवार संख्या	भूमिहीन जनसंख्या	कुल वितरित भूमि एकड़	सामूहिक खेती के लिए रखी गयी	अवितरित पड़ती आदि एकड़
कोरापुट	288	6451	39,871	1711	6457	30,295	1021	20,000
बालेश्वर	93	1738	...	162	...	3782	...	
मयूरभंज	9	223	..	13	...	494	...	
गंजाम	21	886				1255		
कटक	1	119	631	6	17	537	37	

11. खेती और गो-पालन

बंटवारे के बाद जो पहला काम सामने आता है वह पूर्वतन भूमिहीनों को हल-बैल और खेती के दूसरे साधन मुहैया कर देना। इसके लिए साधन-दान से कुछ बैल आदि प्राप्त हुए, फावड़े, पिकास, आदि साधन भी मिले, राज्य सरकार ने भी 30,000 रुपयों की सहायता दी। ज़मीन के पुर्नवितरण के साथ बैलों का वितरण भी तेज़ी के साथ चल रहा है और इस वर्षा-ऋतु के पहले ही जैसे एक हज़ार जोड़ी बैल तथा इसी प्रमाण में खेती के औज़ार बंट जायँ उसके लिए कोशिश हो रही है। अप्रैल के अंत तक 600 जोड़ियों से अधिक बंट भी चुकी हैं। लेकिन यहाँ बैलों की समस्या है। सिर्फ़ बैल बांट देना आसान नहीं हैं। यहाँ के लोग खेती के लिए बैलों से तो काम लेते हैं, और इसलिए गाँवों में गाय भी होती है; लेकिन लोग गाय की सेवा ठीक तरह से नहीं कर पाते। अधिकांश आदिवासी जनता गाय के दूध को खाद्यवस्तु के रूप में इस्तेमाल नहीं करते। सालों पहले स्व० ठक्कर बापा ने एक आदिवासी जमात को गाय के दूध पीने की सिफ़ारिश की थी। इस सूचना से वह जनता इस प्रकार हँस पड़ी मानों कोई विचित्र काम हो। उनको यह बड़ा आश्चर्य मालूम हुआ कि भला मनुष्य दूसरे जानवरों का दूध कैसे पी सकता है?

इसलिए वे गाय को सिर्फ़ बैल ही की माँ मानते हैं और उससे पूरा आर्थिक लाभ न मिलने के कारण उसका पूरा सारों सँभाल भी नहीं करते। गायों को अक्सर वे हल में भी जोतते हैं।

फिर दुर्भाग्य से कंध जाति में गोमांस खाने की प्रथा भी है और आर्थिक दुःस्थिति के कारण इसका प्रकोप बढ़ गया है। इसका एक बहुत ही मार्मिक प्रसंग विनोबाजी की यात्रा के समय सामने आया था। एक पड़ाव पर एक वृद्ध कंध सज्जन यह शिकायत कर रहे थे कि यहाँ के बड़े साहूकारों ने भूदान में ज़मीन नहीं दी है। इससे एक साहूकार ने उलटा आक्षेप किया कि ये लोग गाय को खाते हैं; पापी हैं, इनको क्यों ज़मीन दी जाय। तो उस कंध भाई ने अत्यंत तीव्रता के साथ जवाब दिया—"अगर आप हमारे जैसे पाँच-पाँच दिन सारे परिवार सहित उपवास में बिताते तो फिर पता चलता कि आप भी क्या खाते हैं और क्या नहीं खाते।" इस प्रकार से यह एक दूषित-चक्र बन गया है और इन कारणों से गाँवों में पर्याप्त संख्या में गाय-बैल होते ही नहीं।

यहाँ क़रीब-क़रीब सब क्षेत्रों में चराई के लिए काफ़ी ज़मीन है, कहीं-कहीं बरसात में घास के जंगल ही जंगल होते हैं। इसलिए लोगों को गोसेवा का ख्याल आ जाय और गाय का लाभदायी उपयोग वे सीख लें, तो कोई वजह नहीं कि यह

विभाग अपने पशुधन में सारे हिन्दुस्तान में पहला स्थान क्यों न लें। खेती सुधारने का काम भी पहले दर्जे में आना चाहिए, कारण यहाँ की खेती की पद्धति काफ़ी पिछड़ी हुई है। उसकी जिम्मेवारी लोगों की जड़ता और अज्ञान पर उतना नहीं, जितना कि साधन के अभाव पर है, जिसमें पानी का सवाल अव्वल दर्जे का है। कई गाँवों में गर्मी के मौसम में पीने का पानी भी दो ढ़ाई मील दूर से लाना पड़ता है। पद-यात्रा के कई पड़ावों पर अधिक पानी इस्तेमाल करने की आदत रखनेवाले यात्री दल के लिए पर्याप्त मात्रा में पानी मुहय्या करना ही गाँव-वालों के लिए सबसे बड़ी मेहनत का काम होता था।

उड़ीसा-भर में कहीं सालाना 50-60 इंच से कम बारिश नहीं होती और कोरापुट के काफ़ी हिस्सों में 70 इंच तक होती है। यह जो सारा पानी पहाड़ियों और मैदानों की मिट्टी को काटकर साथ लेते हुए समुद्र की ओर दौड़ता चला जाता है उसको अगर जगह-जगह पर रोक रखा जाय और खेती के उपयोग में लाया जाय तो यहाँ के खेतों में सोना ही पके।

धान, मकई, बाजरा, ज्वार तथा माड़िआ (रागी), कोशला, सुआँ आदि कई प्रकार के दोयम दर्जे के धान्य के अलावा जहाँ सहूलियतें है वहाँ सीम, उड़द, मूंग, चना आदि की खेती भी होती है। पहाड़ियों की खुश्क जमीन में अरहर और तिलहन होते हैं। पैसे की दृष्टि से लाभजनक हल्दी और तमाखू की

कब्तटघाटी (बालेश्वर) के नारायण सोरेन—पहले अपनी सारी जमीन दे दी, तब आठ गाव के ग्रामदान मिले।

खेती भी काफ़ी मात्रा में होती है। पानी का प्रबंध हो, खाद का ठीक उपयोग हो तो इनकी उपज काफ़ी मात्रा में—देढ से दो गुना तक—बढ़ सकती है, नये-नये फ़सलों की बुआई भी शुरू हो सकती है। धान-खेती की जापानी प्रणाली भी प्रविष्ट करायी जा सकती है।

इसलिए खेती-सुधार की दिशा में आबपाशी की योजना को ही प्रथम स्थान दिया गया है। इसके साथ-साथ मृत्तिका-संरक्षण का (Soil Conservation) काम भी चलेगा, जो सदियो की उपेक्षा के कारण बहुत ही विकट बन गया है। आज तक सरकार या जमीन्दार किसीने इस ओर ध्यान नहीं दिया था और बेचारे किसान के पास ज्ञान या साधन की कौन-सी पूँजी थी कि इस बारे में कुछ कर सकता? फलस्वरूप यहाँ की हजारों एकड पड़ती जमीन कटकर बेकार हो गयी है। बाँध बाँधना, ज़मीन को समतल (levelling) बनाना, उतराइयों पर जमीन की मंजिलें बनाना (Terracing) आदि काम इसके लिए करने हैं।

गंजाम की समस्याएँ कोरापुट की जैसी ही है। बालेश्वर-मयूरभंज की स्थिति कुछ भिन्न प्रकार की है। वहाँ की खेती इतनी पिछडी हुई नहीं है और गाय के देखभाल भी बेहतर ढंग से होता है, हालाँकि जैसे उडीसा के या हिन्दुस्तान के सर्वसामान्य गाँवों में, वैसे यहाँ भी, इन विषयों में उन्नति के लिए पर्याप्त अवसर है।

ग्रामदान के बाद इन सारे क्षेत्रों में आगे बढ़ने की अपूर्व संभावनाएँ हमारे सामने खुल जाती हैं। जब तक ज़मीन की अलग-अलग मालकियत होती है, कुछ भूमिवान और कुछ भूमिहीन होते हैं, फिर भूमिवानों में भी बड़े छोटे का भेद होता है तब तक ज़मीन की तरक़्क़ी की दिशा में आगे बढ़ना असंभव-सा होता है। इधर ज़रूरी काम और उधर बेकार श्रम दोनों पास ही पास, लेकिन उनमें मेल जमता नहीं। सिंचाई या मृत्तिका-संरक्षण की किसी योजना के लिए श्रमदान का सवाल उठाया जाय तो ग़रीब लोग यही कहेंगे कि थोड़े भूमिवानों के फ़ायदे के लिए हम क्यों मेहनत करें? और भूमिवानों के पास पूँजी भी इतनी नहीं होती जिससे वे उसके बल पर कुछ कर पायें। इस तरह समस्याओं के समाधान के सारे साधन गाँवों में मौजूद रहते हुए भी भरपूर समृद्धि की संभावनाओं के बीच में ही हमारे गाँव भूखमरी के शिकार बने हैं। कुछ लोग पूछते हैं कि, क्या *ग्रामदान के बिना भी गाँवों की पुनर्रचना संभवनीय नहीं है?* क्या सामूहिक विकास-योजना या (National Extension Service) जैसी योजनाओं के ज़रिये लोगों के उत्साह तथा कर्म-शक्ति को जागृत तथा संचालित नहीं किया जा सकता? क्या निजी मालकियत होते हुए भी सहकारी खेती ग्रामीकरण का स्थान नहीं ले सकती?

ऊपर के विवेचनों में इन सवालों का जवाब मिल जाता

है। जहाँ निजी मालकियत है, भूमिहीन-भूमिवान भेद है, वहाँ एक ही गाँव में मानों कई अलग-अलग गाँव बसे हुए होते हैं। इनमें से हरेक गिरोह की बुद्धि अलग-अलग दिशाओं में काम करती है। ऊँचे वर्ग के लोगों को जिन चीज़ों का अभाव महसूस होता है ग़रीब उसके लिए कोई उत्साह अनुभव नहीं करते। भला जहाँ पीने का पानी ही नहीं, वहाँ पहले पक्की सड़क बनाने की बात चले तो फिर पानी के बिना तड़पनेवालों को कहाँ से उत्साह आये? फिर ग़रीबों की जो हालतें होती हैं उनकी ओर बड़ों का ध्यान जाता ही नहीं। इस हालत में छोटे-बड़े सबको मिलाकर सहकारी खेती का नियोजन करना मानों स्वार्थ के दल-दल में फँसे हुए बड़े मालिक के हाथों में सारा गाँव की बागडोर सौंपने-जैसे होता है। अपनी प्रतिष्ठा तथा धन-बल के कारण वे ही गाँव के संगठन का संचालक बन बैठते हैं। उसी की ओर इशारा करते हुए विनोबाजी ने कहा था—"अगर गाँव की योजना करने की ताक़त भी उन्हीं के हाथों में दी जाय तो गाँव की हालत बहुत बुरी हो जाएगी। गाँव में पक्षभेद निर्माण होंगे और कोई काम नहीं होगा। इसलिए हमें इस बात में ज़रा भी संदेह नहीं कि ज़मीन के ग्रामीकरण के बिना ग्रामोत्थान की योजना नहीं हो सकती। आज की हालत में जो ग्राम-समितियाँ बनती हैं उनके लिए गाँव में विश्वास पैदा नहीं होता। जब गाँव के बड़े लोग गाँव के लिए अपनी सारी ज़मीन दे देते हैं और बँटवारे में

उनको भी थोड़ी ज़मीन मिल जाती है तब उन्हें गाँव का प्रेम, श्रद्धा तथा आदर हासिल होता है, विश्वास पैदा होता है....आज की हालत में तो बड़े मनुष्य गाँव को लूटनेवाले होते हैं। जैसे शेर को इसीलिए जंगल का राजा कहा जाता है कि वह सबको खाता है, गाँव में भी वैसी बात चली तो काम नहीं चलेगा।...."

एक गाँव का प्रत्यक्ष अनुभव हमें है; जहाँ वर्षा के अभाव से पाँच-छः एकड़ ज़मीन की ख़ड़ी फ़सल सूख रही थी और एक नाले को बाँधने से कम से कम सौ एकड़ की खेती बचायी जा सकती थी। इसके लिए बहुत भारी मेहनत की ज़रूरत नहीं होती। लेकिन यह काम नहीं हुआ; सारी फ़सल ही जल गयी।

ग्रामदान के बाद ये रुकावटें हट जाती हैं। गाँव के सम्मिलित प्रयत्नों से किसी ज़मीन में सिंचाई की व्यवस्था हुई तो उसका लाभ हर परिवार को मिल सकता है। इस तरह मृत्तिका-संरक्षण, ज़मीन-सुधार आदि के काम में भी सहयोग का रास्ता खुल जाता है। इन कामों के लिए ग्रामदान गाँवों के लोगों में श्रमदान करने की उत्सुकता बढ़ाता है। मानपुर में गाँववालों ने 8-9 दिन के श्रमदान से एक कामचलाऊ तालाब खोद डाला; जिसके अभाव में उन्हें नहाने-धोने में काफ़ी दिक़्क़त हो रही थी। कोरापुट के गरंटा में एक जलभंडार के बांधों की ऊँचाई व लंबाई बढ़ाकर उसकी धारण-शक्ति बढ़ायी गयी और क़रीब 60 एकड़

ज़मीन में सिंचाई की व्यवस्था हुई, वहाँ 71 भाई-बहनों ने एक महीने तक श्रमदान दिया है। राज्य और भारत सरकार भी इसके लिए खुले दिल से पैसा ख़र्च करने को तैयार है, लेकिन कमी है निष्णातों की, जिसके कारण अब तक काम बहुत ही कम आगे बढ़ा है। जहाँ अधकच्चे इंजिनीयर और ओवरसीयरों को भी सरकारें अपने काम के लिए झपट कर उठा लेती हैं वहाँ हमारे लिए पर्याप्त मात्रा में वे कहाँ से मिलें? और हम जो चाहते हैं कि पाँच साल के काम एक ही साल में हों!

ख़ैर, भारत सरकार में ऊँचे ओहदे पर काम करनेवाले एक जवान इंजिनीयर श्री कृष्णराव दाते तथा उडीसा के 2-3 भूतपूर्व सरकारी इंजिनीयर व ओवरसीयर इस काम के लिए आगे आये हैं और उनकी सहायता से काम की योजनाएँ बन रही हैं। सिंचाई की योजनाओं का प्राथमिक निरीक्षण चल रहा है। अकसर यह पाया जाता है कि कहाँ किस प्रकार से बांध देने से या नालियाँ खोदने से सिंचाई के पानी को संगृहीत करके खेतों में प्रवाहित कराया जा सकता है, इसका अच्छा भान स्थानिक लोगों को होता है। वे जिस प्रकार की योजनाएँ देते हैं तज्ञ लोग बाद में उसको जांचते हैं, तो वह प्रायशः ठीक ही निकलता है। फिर भी बांध आदि के प्लैन्स और एस्टीमेट्स ठीक तरह से बनाये बग़ैर काम शुरू करना मानों अंधेरे में पत्थर मारना जैसा ही हो जाएगा।

अपना टेकनिशीयन् वर्ग (Technicians) तैयार करने के लिए यह सोचा गया है कि हमें उपलब्ध इंजिनीयर और ओवरसीयरों के ज़रिये यहाँ 50-60 कार्यकर्ताओं को ओवरसीयरी की तालीम देकर तैयार किया जाय। बांध आदि के लिए लेवेलिंग; एस्टिमेट्स बनाना आदि जितने ज्ञान की ज़रूरत हो उतना ही तालीम देकर उनको प्रत्यक्ष काम में लगाया जाय और फिर बाद में समय-समय पर उनके ज्ञान और योग्यता में वृद्धि की जाय। इस तरह से कम से कम समय में सिंचाई की योजना को कार्यान्वित करने का रास्ता सोचा जा रहा है और यह अपेक्षा है कि 1957 के जून तक पाँच हज़ार एकड़ ज़मीन की सिंचाई की व्यवस्था हो सकेगी। इसमें से 1956 के जून तक 500 एकड़ की सिंचाई की व्यवस्था 6 योजनाओं के ज़रिये पूरा होना अपेक्षित है।

ओवरसीयर तालीम का जो शिविर इस साल के पहली जुलाई से शुरू होनेवाला है उसके साथ इंजिनीयरिंग कालेजों के विद्यार्थियों को समर कैंप भी गर्मी की छुट्टी तथा जाड़े के मौसम में संगठित कराने का सोचा गया है। इस तरह का पहिला शिविर 6 मई को शुरू हो गयी है। गुजरात के आनंद के वल्लभ इंजिनीयरिंग कालेज के 18 विद्यार्थी इसमें शामिल हुए हैं। ये विद्यार्थी इन शिविरों के दरमयान भूदान और नवनिर्माण काम के बारे में प्रत्यक्ष ज्ञान हासिल करेंगे और उनके द्वारा सिंचाई

तथा मृत्तिका-संरक्षण की दृष्टि से कुछ प्रारंभिक सर्वे का काम भी हो सकेगा। इस तरह से उनके जीवन में पिछड़े हुए प्रदेशों में पीड़ितों की सेवा का कुछ स्पर्श होगा। और उनमें से सेवा-भाव से काम करने के लिए भी आगे चलकर कुछ प्रेरित होंगे, यह अपेक्षा की जा सकती है। इसी प्रकार खेती विद्यालय के विद्यार्थियों का एक समर कैंप की योजना भी की गयी है।

खेती सुधार तथा गो-पालन के लिए अब 6 आदर्श खेती, गो-पालन केन्द्र खोलने की योजना बनी है। गोसेवा संघ (नालवाड़ी) के श्री रामदास भाई तथा सेवाग्राम के खेती विशारद सेवक श्री रेड्डीजी कोरापुट क्षेत्र में पहुँच गये है। सरकारी खेती विभाग के निष्णातों का मार्गदर्शन भी मिलता रहा है। मध्यप्रदेश के खेती विभाग के डायरेक्टर महोदय ने भी इस क्षेत्र का दौरा करके अपनी मूल्यवान सूचनाएँ दी हैं। इस तरह इस काम का बुनियाद अनुभव के ठोस आधार पर रची जा रही हैं।

12. शोषण-मुक्ति

खाद, पानी और मेहनत से खेती की पैदावार बढ सकती है, लेकिन परिश्रम करनेवालों को उसके उपभोग का मौका मिलेगा तभी न उनमें कुछ जान आएगी? जमीन पर अधिकार मिलने से यह मौका उनको एक हद तक मिल जाता है। लेकिन उतने से सारा काम पूरा नहीं होता। शोषण के और दो भयानक प्रकार बच जाते है—व्यापार और साहूकारी—जिनके निरसन के सिवा ग्रामीण जनता के भाग्य में सुख नहीं। इस संबंध में विनोबाजी की यह सूचना है कि, हर गाँव में गाँववालों की अपनी एक सहकारी दूकान कायम हो। गाँववाले उसीसे ही अपनी सारी जरूरत की चीजें खरीदें और गाँव की जरूरत से ज्यादा (Surplus) उपज की बिक्री भी उसीके जरिये हो। फिर यह देखा जाय की दूकान के जरिये गाँवों में खपनेवाली चीजों में से किन चीजों का निषेध करना चाहिए और किन्हें गाँव में ही बनाया जा सकता है। फिर गाँव में बन सकनेवाली चीजों को बनाने की व्यवस्था गाँव में की जाय और निषिद्ध चीजों पर रोक लगा दी जाय। विनोबाजी की यह साफ़ माँग है कि गाँव के आयात-निर्यात पर रोक लगाने का संपूर्ण अधिकार ग्रामसभा को होना चाहिए और उसमें किसी बहाने राज्य या केंद्रीय

सरकार को दस्तंदाजी करने का अधिकार नहीं होना चाहिए। इस अधिकार के लिए कभी गाँववालों के ऊपर सरकार से लड़ना-भिड़ना भी पड़े तो वैसा लड़ लेना भी आवश्यक व उचित होगा। इस अधिकार के बिना गाँव की आर्थिक स्वतंत्रता की नींव कभी नहीं डाली जा सकेगी।

इस प्रकार से मंगरोठ और भानपुर में यथाशीघ्र सहकारी दूकानें शुरू हो गयी थीं। मानपुर की दूकान की तो इतनी ख्याति मिली की 4-5 मील दूर से दूसरे गाँव के लोग भी वहाँ सामान खरीदने के लिए आया करते हैं।

कोरापुट में भी सहकारी दूकानों के इस काम को पहले ही हाथ में लिया गया। वैसे तो सारे हिंदुस्तान में व्यापारी तथा साहूकारों के शोषण काफ़ी बलवान है, लेकिन कोरापुट-गंजाम के इलाके में तो इसकी हद हो गयी है। साहूकारों के शोषण की कुछ झांकियाँ पहले के एक अध्याय में दी गयी है। दूकानदारों में भी वैसे ही मुनाफ़ाखोरी की कोई हद नहीं है। बड़े शहरों से 10-20 मील पर ही सामानों की कीमत दुगुनी तिगुनी हो जाना मामूली है। अगर उपज न बढ़ते हुए भी गाँववालों को इस शोषण से छुटकारा मिल जाएगा तो उनकी हालत में दुगुनी तरक्की हो जाएगी। इसलिए इस शोषण-मुक्ति को यहाँ खेती-सुधार से भी अधिक महत्व दिया गया है और उसकी योजना तेज़ी से अमल में लायी जा रही है।

दूकानों के संगठन के लिए सद्भाग्य से सरकारी सहकारी विभाग से एक अनुभवी कार्यकर्ता मिले जो वहाँ से इस्तीफ़ा देकर यहाँ काम के लिए आ गये। जनवरी से दूकानें चालू करने का काम हाथ में लिया गया और अप्रैल के अंत तक कोरापुट-गंजाम के क्षेत्र में 26 तथा बालेश्वर-मयूरभंज में 9 दूकानें चालू हो गयी हैं। दूकान के लिए उस क्षेत्र के हर परिवार से 1 रुपये के हिसाब से शेयर इकट्ठा किया जाता है और संगृहीत पूंजी के 10 गुने तक रकम सर्व सेवा-संघ से उस दूकान के लिये उधार मिलता है। इस तरह अब तक 15,000 रुपयों की पूँजी इन दूकानों में संघ की ओर से लगायी गयी है। इन दूकानों के निरीक्षण के लिए निर्माण समिति की ओर से कुछ निरीक्षक भी नियुक्त किये गये हैं।

इन दूकानों को गाँववाले अपना समझकर उनके कारोबार में बहुत ही रस लेते हैं। बाहर के कुछ सज्जन गंजाम का ग्राम-दान ग्राम आकिलि देखने के लिए गये तो उन्होंने पाया कि गाँव की दूकान का सारा सामान एक खुले छप्पर के नीचे ही पड़ा हुआ है। उनको अचरज हुआ और उन्होंने गाँववालों से पूछा—यह सामान ऐसा बाहर पड़ा हुआ है, यह कोई चुराएगा नहीं! लोगों ने उतने ही अचरज से जवाब दिया—यह सारे गाँव की संपत्ति है। उसे कौन क्यों चुराएगा! सचमुच इन दो-तीन महीनों के बाद इन दूकानों की जो जांच की गयी उससे

पता चला कि एकाध को छोड़कर बाकी के किसी में घाटा नहीं हुआ है और सारा काम बहुत ही प्रामाणिकता के साथ चलाया गया है। इन दूकानों से लोगों को काफ़ी बचत होती है, इसलिए सिर्फ़ उनके साझेदार ग्रामदानी गाँवों के ही नहीं बल्कि आसपास के दूसरे गाँवों के लोग भी वहाँ सामान खरीदने को आते हैं। एक-एक दूकान के क्षेत्र में 12-15 गाँव होते हैं, और अक्सर इनमें से कुछ गाँवों के एकाध जिम्मेवार लोग अपने गाँव के लिए माल पेशगी ले जाते हैं और वह बेचकर पैसा दूकान में जमा कर देते हैं। इस प्रकार से एक प्रकार की शाखा-दूकानें भी चल रही हैं। आगे चलकर 5-6 ऐसे केंद्र भंडार खोलने का विचार है जहाँ से इन दूकानों को मुहय्या किया जा सकेगा।

दूकान में बेचे जानेवाले सामान का निरीक्षण से पता चलता है कि इनमें मुख्यतया, कपडा, खाने का तेल, नमक, मिट्टी का तेल व शक्कर, गुड, हलदी, मिर्च, दियासलायी आदि ही बेचे जाते हैं। चाय, तंबाखू आदि की खपत भी कइयों में कम नहीं है। जहाँ नजदीक शालाएँ हैं वहाँ कागज, पेनसिल, स्लेट आदि की भी कुछ खपत होती है। इनमें ऐसी कई चीजें हैं जिनका गावों में निषेध ही होना चाहिए। कपडा, तेल, आदि दूसरी कई चीजें गाँवों में ही बन सकती हैं। इनके जरिये कितना धन गाँव से बाहर चला जाता है उसकी कोई जानकारी

लोगों के पास नही थी। अब इन दूकानों के हिसाब से उन्हें वह जानकारी मिलेगी और ग्रामोद्योग के विकास के लिए उन्हें इससे जरूर प्रेरणा मिलेगी। आगे चलकर कुछ ग्रामोद्योगों का संगठन दूकानों के जरिये हो सकेगा।

गाँव के निर्यात की जिम्मेवारी भी दूकान पर आ रही है। गाँववालों को जो फ़सल बेचना होता है उसको अब वे दूकान में जमा रखकर उसकी कीमत की आधी रकम वहाँ से पेशगी ले सकते है। उस अमानत रखी हुई फसल की बिक्री की जिम्मेवारी उस गृहस्थ पर ही होता है और वह उचित भाव पटने पर उसे बेचकर दुकान की पेशगी लौटा देता है। यह स्पष्ट है कि इसे आगे और भी संगठित रूप दिया जा सकता है, लाखों की बचत की जा सकती है और गाँव में अनाज का एक रिजर्व स्टाक भी निर्माण किया जा सकता है।

इस तरह गाँव का अनाज गाँव में रखने में लोग समर्थ हुए तो साहूकारों से छुटकारा पाने का एक मार्ग मिल जाएगा। आवश्यकता पडने पर लोग उसीमें से बिना व्याज के उधार ले सकेंगे।

साहूकारों से बचने का एकमात्र रास्ता है कर्ज लेने की आवश्यकता को कम करना। शराबखोरी, विवाह, श्राद्ध आदि के अवसर पर फिज़ूल खर्चा आदि भी कर्जदारी के कारण है। अब सद्भाग्य से कोरापुट और गंजाम में नशाबदी जारी हुई है

और लोगों में नशेबाज़ी के खिलाफ़ एक ज़बरदस्त प्रवृत्ति पैदा हुई है। सामाजिक उत्सवों और रस्मों पर खर्च कम करने की दृष्टि से विनोबाजी की यह एक सूचना थी कि विवाह आदि सामूहिक ढ़ंग से किये जायँ और इनमें किसी एक घर का पैसा खर्च न हो, उन्हें सारे गाँव का ही काम माना जाय। इस प्रकार से मानपुर में श्राद्ध आदि सामूहिक तौर पर गाँव की ओर से किये गये हैं। आकिलि में अभी गाँव के तीन लड़कों के विवाह एक ही समारोह में संपन्न किये गये। जहाँ सैकड़ों गाँव का एक नया समाज ही निर्माण हुआ है वहाँ सामाजिक रस्मो-रिवाज़ों में इस प्रकार के परिवर्तन आसानी से हो सकेंगे।

लोगों पर जो पुराने कर्ज़ों का—बहुतांश में झूठा-बोझ है उसमें से मुक्ति दिलाने की दिशा में पहला कदम 'सामूहिक समझौता' का सोचा गया है। कर्ज़ लेनेवाला साहूकार के साथ अकेला बात नहीं करेगा, ग्राम-सभा की ओर से ही उसके साथ बातचीत की जायगी। हर एक का कर्ज़ ग्राम-सभा जाँच करके देखेगी और अगर पहले से ही कर्ज़दार ने काफ़ी रकम अदा कर दिया हो तो बाकी का माफ़ कर देने के लिए साहूकार से अर्ज़ करेगी। कर्ज़ का जितना हिस्सा आगे चुकाया जाना वाजिब समझा जाएगा उतने के लिए किश्तें बांध देगी। इस दिशा में अभी किसी ढ़ंग से काम शुरू नहीं हुआ है; लेकिन बहुत गाँवों के लोगों ने कर्ज़ चुकाना मुलतवी रखी है।

अक्सर साहूकार लोगों को डरा-धमका कर उनका चाहे जितना अनाज व फ़सल ले जाते हैं, उसको वे ब्याज ही के खाते वसूली होंगे। चंदिकार नाम के गाँव में इस तरह साहूकारों ने आकर लोगों को डांट-डपटकर उनकी हल्दी की फ़सल को ले जाने की कोशिश की, लेकिन कार्यकर्ताओं के हस्तक्षेप से वे वैसा करने में समर्थ नहीं हुए। इस तरह से जितनी हल्दी गाँव में बची उसकी कीमत 6,000 रुपये की आंकी गयी है, जो निरे लूट में ही चली जानेवाली थी।

ग्रामदान गाँवों में बसनेवाले छोटे-छोटे साहूकारों से कर्ज़ माफ़ कर देने की घटनाएँ भी हुई हैं। मानपुर में एक भाई ने कर्ज़ा माफ़ करके रेहन रखी गयी ज़मीन लौटा दी। कोरापुट के सर्वापुट गाँव के साहूकारों ने बंटवारे के अवसर पर 1,276 रुपयों के कर्ज़ छोड़ दिए और उस मज़मून के त्यागपत्र भी लिख दिये।

13. खादी-ग्रामोद्योग

आख़िर खादी-ग्रामोद्योगों के बिना सच्चा ग्रामराज और शोषण का पूरा निराकरण असंभव है। इसलिए खादी-ग्रामोद्योग और भूदान को विनोबाजी ने 'सीताराम' जैसे अविच्छेद्य माना है। जहाँ ग्रामदान होता है वहाँ स्वतः इनके लिए अनुकूल क्षेत्र तैयार हो जाता है। मंगरोठ में आज घर-घर चरखा चलते हैं जो दूसरे किसी गाँव में इतनी आसानी से संभव नहीं होता। खादी-ग्रामोद्योग तथा ज़मीन के मेल से ग्रामीण जनता के जीवन में कितनी बड़ी क्रांतिकारी परिवर्तन संघटित हो सकते है इसकी झाँकियाँ मंगरोठ में देखने को मिलती हैं। पहले ही कहा जा चुका है कि यहाँ के पुराने धंधे मर चुके थे या टूटीफूटी हालत में चल रहे थे। गाँव के बहुत-से किसानों को ही खेती से पर्याप्त पोषण नहीं मिलता था, तो फिर भूमिहीनों का क्या कहा जाय। इसलिए वहाँ के बहुत सारे कार्यक्षम व्यक्ति रोज़ी के खोज में कलकत्ता आदि शहरों को चले जाते थे। शहरों के निम्नतम स्तर के साथ उनके संबंध के कारण उनके जरिए गाँव में क्या-क्या बुरी आदतों की तथा व्यसनों की आमदनी होती होगी, पारिवारिक जीवन किस तरह तहस-नहस होता होगा, इसकी कल्पना हम कर सकते हैं।

मंगरोठ में ग्रामदान के बाद धीरे-धीरे खादी और ग्रामोद्योग आये। घर-घर चरखे चले। करघे चले। मृतप्राय चमड़ा-रंगाई का काम फिर से सजीव हुआ। जूते बनाना भी शुरू हुआ। बाँस के टोकरे आदि बनाने जैसे छोटे-छोटे धंधे भी जाग उठे। उधर गाँव में नहर आयी और ज़मीन के लिए बारहों महीने पानी मिलने लगा। गाँव में ही सब लोगों को धंधे मिलने लगे और बेकारी के मौसम में भाग्य अन्वेषण के लिए कलकत्ता दौड़ना बंद हो गया।

ज़मीन का दृढ़ आश्रय मिलने पर ही ग्रामोद्योग पनप सकते हैं तथा ग्रामोद्योग के सहारे से ही ज़मीन में जान आ सकती है। इसका दर्शन हमें यहाँ मिलता है।

उड़ीसा में भी खादी-ग्रामोद्योग के लिए बहुत ही अनुकूल क्षेत्र हैं। यहाँ के लोगों की उँगलियों की सृजन-शक्ति प्रख्यात है। तिसपर कई जगहों पर पुराने ज़माने की खादी अब भी मरी नहीं है। कोरापुट के वैसे एक क्षेत्र में ही तो विश्वनाथ भाई ने हज़ारों स्वावलंबन के चरखे चलवाये थे। कुर्जेंद्री में विनोबाजी ने गाँव की परिक्रमा करते हुए दस-ग्यारह साल के लड़के को कपड़ा बुनते हुए देखा जो उसकी भाषा में "पानी में मछली की-सी कुशलता" से बुनता जाता था और उसकी आठ साल की बहन उसे नलियाँ भर-भरकर देती थी। विनोबाजी ने इस रमणीय दृश्य का वर्णन अनगिनत प्रार्थना-प्रवचनों में

इनके जीवन में सुप्रभात आया—ग्रामदानी बारगपाली
(कोरापुट) के भूतपूर्व भूमिहीन भाई।

किया है और लोगो को खादी को अपनाने के लिए आह्वान किया है।

कोरापुट-गंजाम के आदिवासी बहुत ही कम कपडा पहनते हैं। इसके दो कारण है। पहला, जो सभ्यता हमें अनावश्यक कपडों का बोझ ढोने को मजबूर करती है वह वहाँ पहुँची नही है और दूसरे, गरीबी, जिसके कारण सरलतम जीवन के लिए आवश्यक न्यूनतम कपडे भी उन्हें मिलना कठिन होता है। कइयों के पास बदलने के लिए दूसरा कपडा न होने के कारण वे महीनों तक कपडे धोते ही नही। ओढने के लिए पर्याप्त कपडों के अभाव से उन्हें जाडे की रातों में घर के अंदर आग सुलगाकर सोना पडता है। दो-तीन हजार फुट की ऊँचाई पर की कडी सर्दी में बच्चों को रात में नींद नहीं आती है। वे रात-भर ठिठुरते रहते हैं। यह दृश्य अत्यंत करुण होता है।

इस हालत से उन्हें उबारने की शक्ति सिर्फ खादी में ही है। कातनेवाले परिवारों को फौरन अधिक कपडा मिल जाता है। वे दूसरे परिवारों से अधिक साफ-सुथरे रहते है, पर्याप्त कपडा पहनते हैं, यह कुजेंद्री के क्षेत्र में किसी भी रास्ता चलते मनुष्य के ध्यान में आएगा। लोगों को एक व्यापक पूरक धंधा मिल जाता है, जिसकी बराबरी और कोई नहीं कर सकता।

अंबर चरखे के प्राथमिक प्रयोग के दिनों में मानपुर में उसका एक प्रयोग-केंद्र खोलने का निर्णय हुआ था और वहाँ

अंबर चरखा तथा उसके शिक्षक पहुँच गये थे। विनोबाजी के आगमन के बाद कोरापुट में उसे व्यापक रूप से चालू करना तय हुआ है और कुजेंद्री में उसका तालीम-केन्द्र शुरू हुआ है। वहाँ कार्यकर्त्ताओं की दो टोलियों को तालीम मिल चुकी है तथा कुछ गाँववाले भी उसे सफलतापूर्वक चला रहे हैं।

1955 के अप्रैल तक इन क्षेत्रों में 6,000 किसान तथा खड़े चरखे, 600 अंबर चरखे तथा 600 करघे चलाने की योजना बनायी गयी है। कस्तूरबा की बहनों ने अभी अपने केन्द्रों में बहनों और बच्चों को चरखे तथा तकली पर कताई सिखाना शुरू कर दिया है।

कपास की खेती के लिए लोगों में आग्रह पैदा हुआ है और अगले चौमासे में हरएक गाँवों में प्रयोग के तौर पर कुछ न कुछ कपास की खेती शुरू करवाने की कोशिश की जाएगी। 400 एकड़ के लिए बीज संगृहीत किया जा चुका है।

पहले साल छः सघन क्षेत्रों के हर एक में तेल-घानी, खंडसारी, रस्सी बनाना, कुम्हार-काम, बढ़ई-काम, लोहारी तथा बाँस के काम के एक-एक केन्द्र शुरू करने की योजना बनायी गयी है। हाल ही में साबुन बनाने का एक तथा चमड़ा-रंगाई का भी एक केन्द्र खोले जाएँगे। चमड़े के काम की दिशा में अब इतनी शुरूआत हुई हैं कि एक कार्यकर्त्ता मिला है और कच्चा चमड़ा ख़रीदने के लिए एक केन्द्र शुरू हो गया है। यह चमड़ा अभी

नालवाड़ी (वर्धा) के चर्मालय में तथा टीटीलागड़ (उड़ीसा) के सरकारी चर्मालय में भेजा जाता है। बालेश्वर के क्षेत्र में चमड़े के काम की अच्छी संभावना है। वहाँ ग्रामदान के क्षेत्र में अड़ोस-पड़ोस के गाँवों में भरे ढोरों से चमड़ा उतारने का काम करनेवाले साढ़े तीन सौ परिवार हैं। एक सहकारी समिति के ज़रिए इनके धंधे को सुसगठित करने की योजना बनी है। इसके लिए राज्य सरकार से 21,000 रुपये का ग्रैंट तथा उतनी ही रक़म और उधार के रूप में मिली है।

मधुमक्खी-पालन सिखाने के लिए भी दो कार्यकर्ता नियुक्त हुए हैं। इसके लिए सारे प्रांत में ही अच्छा क्षेत्र पड़ा है।

खादी तथा ग्रामोद्योगों के लिए सारे सरंजाम मुहय्या करने के लिए रायगड़ा में एक सरंजाम कार्यालय शुरू हो गया है। यहाँ तकली से लेकर अंबर चरखे तथा करघे तक सब प्रकार के सरंजाम बनेंगे। साल में 5,000 चरखे 100 तेलघानी 1,000 शहद की पेटियाँ तथा 500 हल बनाने की क्षमता इसकी रहेगी। इसके ज़रिए गाँव के लोगों को भी बढ़ई तथा लोहारी के काम की तालीम देकर तैयार किया जाएगा जैसे बहुत सारे खादी ग्रामोद्योगों के साधन-सामग्री अपने गाँव में ही बना सके।

यह सारा काम अ. भा. खादी ग्रामोद्योग बोर्ड की सहायता से चलेगा। इसके लिए हर सघन क्षेत्र में बोर्ड के एक एक आनरेरी क्षेत्र संगठक और आवश्यकतानुसार दूसरे कार्यकर्ता रहेंगे।

14. तालीम

राष्ट्रनिर्माण की योजना में तालीम का स्थान सबसे पहले होना चाहिए और बापू के रचनात्मक कामों के परिवार में सबसे पीछे पैदा होने पर भी उसे श्रेष्ठ स्थान मिल चुका है। ग्रामदान के बाद नयी तालीम के वास्ते द्वार मुक्त हो जाता है और मंगरोठ में उसकी सुव्यवस्थित योजना कार्यान्वित हो रही है।

उड़ीसा के कई जिलाओं में तालीम का फैलाव अत्यंत मर्यादित है। कोरापुट में शिक्षितों की संख्या सिर्फ 5% है। एक दृष्टि से यह अच्छा ही है कि हमें नयी तालीम के लिए कोरा कागज ही मिल जाता है। यहाँ की विशेष परिस्थिति को देखते हुए विनोबाजी ने अपनी एक घंटे की पाठशालावाली योजना पर यहाँ जोर दिया था। उन्होंने कहा—"सैकड़ों गाँवों में तालीम की व्यवस्था नहीं है और जहाँ है वहाँ गरीबों के बच्चे स्कूल में नहीं जाते। वे तो अपने माता-पिताओं के कामों में मदद करते है। इन सब बातों का ख्याल करते हुए हम यह निर्णय पर पहुँचे हैं कि हर गाँवों में एक घंटे की शालाएँ चलानी चाहिए। वहाँ गाँव के गरीब लडके अपना कामकाज करते हुए भी आ सकेंगे और राजी-खुशी से आएँगे। इससे पढ़ाई में हानि नही

पहुँचेगी। आजकल स्कूल में बच्चे चार-पांच घंटे जो पढ़ते हैं उसमें पूरे एकाम नहीं होते। अध्ययन नींद-जैसा होता है। गहरी नींद थोड़ी होने पर भी लाभदायी होती है इसी तरह एक घंटे का गहरा अध्ययन भी लाभदायक होगा। इस तरह चार-पाँच घंटों का काम दो घंटों में हो सकेगा। फिर आजकल की शालाओं में साल में छः महीने की छुट्टी होती है। इन छुट्टियों को हम बंद कर देंगे तो साल-भर एक घंटे की पढ़ाई से ज्ञान की कोई कमी नहीं होगी।....

"गाँव के ही एक भाई शिक्षक होंगे जो सुबह लड़कों को और शाम को प्रौढ़ों को एक-एक घंटा पढ़ाया करेंगे और दिन-भर अपना धंधा करेंगे। गाँववाले साल के आख़िर में उनको प्रेम से कुछ कुछ अनाज दे देंगे।"

सिर्फ़ बच्चों की तालीम नहीं, विश्वविद्यालय तक की ऊँची से ऊँची तालीम की व्यवस्था भी हर एक गाँव में हो सकती है और होनी चाहिए, क्योंकि 'समग्र विश्व का एक छोटा स्वरूप उनमें मौजूद है।' यह विनोबाजी का आग्रह है। इसके लिए हमारे देश में पुराने जमाने से चलती आयी हुई परिव्राजक संस्था को पुनरुज्जीवित करना होगा। 'परिव्राजक सन्यासी गाँव-गाँव घूमेंगे और किसी गाँव में दो तीन महीने बैठ जाएँगे तो उनसे वहाँ का हर एक गाँव को लाभ मिलेगा। ये सन्यासी याने चलते-फिरते विश्वविद्यालय।'

पिछड़े हुए प्रदेशों में अपनी पदयात्रा के दरमयान विनोबाजी ने शिक्षण की आवश्यकता के बारे में लोगों को विशेष रूप से समझाया। फलस्वरूप अब लोगों में इस बाबत में जागृति आयी है और कई गाँवों में लोगों ने अपनी ओर से शिक्षक नियुक्त करके बच्चों की पढ़ाई शुरू कर दी है। कई गाँवों में प्रौढ़-शिक्षण के लिए रात्रि-पाठशालाएँ भी शुरू हुई हैं। कस्तूरबा की बहनों ने भी कहीं कहीं बाल-वाड़ियाँ शुरू की हैं। लेकिन निर्माण की योजना में शिक्षण-व्यवस्था को पहले दो साल में जान-बूझकर हाथ में नहीं लिया गया है। इस समय सारी ताक़त पहले शोषण-मुक्ति पर ही केंद्रित करना है और लोगों को दोनों शाम पेट-भर भोजन और तन ढकने का कपड़ा निश्चित रूप से मिलने लगेगा तो तालीम की समस्या को व्यवस्थित रूप से हाथ में लेने का योग्य अवसर और वातावरण का भी निर्माण होगा।

लेकिन बच्चों की तालीम को तत्काल के लिए बाध्य होकर ताक पर रखते हुए भी व्यापक अर्थ में तालीम के काम की ओर दुर्लक्ष्य नहीं किया गया है और प्रौढ़-शिक्षण को योजना में महत्व का स्थान मिला है। ग्राम सभा का कारोबार संभालना, दूकान चलाना आदि कामों के ज़रिए लोगों को जनतंत्र की जो तालीम मिलेगी वह और कहीं नहीं मिल सकती। खादी-ग्रामोद्योग आदि की सारी योजनाएँ तालीम की योजनाएँ ही हैं। बांध-बांधने, रास्ता बनाने आदि कामों को भी अण्णा साहेब की

प्रतिभा ने तालीम की योजना में परिवर्तित कर दिया है। कोरापुट में मिट्टी खोदने के काम में भी कुशलता की कमी है। सरकारी काम करवाने-वाले ठेकेदार स्थानिक लोगों को मज़दूरी के काम में नहीं लगाते। वे नज़दीक के आंध्र ज़िलों में से मज़दूर ले आते हैं। वे मानते हैं कि आदिवासी अकुशल मज़दूर हैं उसके द्वारा नियमित काम नहीं हो सकता। परिणामस्वरूप उनकी स्थिति और भी बिगड़ती गयी है।

लेकिन ग्रामदान के क्षेत्र में बांध, तालाब, सड़क आदि की सारी योजनाएँ ग्रामवासियों के द्वारा ही कार्यान्वित होंगी। उनमें ठेकेदारों का कोई स्थान नहीं होगा। इन्हें कार्यान्वित करने के लिए एक भूमिसेवादल की योजना की गयी है। ऐसे एक-एक दल में सौ, दो सौ नौजवान होंगे जो किसी योजना के स्थान पर जाकर शिबिर जीवन व्यतीत करेंगे और मज़दूरी करने के साथ-साथ कुछ बौद्धिक ज्ञान भी हासिल करते रहेंगे। इस तरह इनमें एक साथ काम करने की आदत पड़ेगी, नेतृत्व का भी निर्माण इनमें से होगा, फिर इस प्रकार के निर्माण के काम—सड़कें बनाने, तालाब खोदने या मकान बांधने आदि के लिए जो खास प्रकार की कुशलताएँ तथा योग्यताएँ चाहिए उनका निर्माण भी उनमें होगा।

इस प्रकार का एक शिबिर गरंडा में जनवरी 1956 में शुरू हुआ था, जिसमें 71 आदिवासी तरुण-तरुणियाँ शामिल

हुई थीं। शिबिर एक माह तक चला। यहाँ आने से इनके जीवन-क्रम में नियमित जगना, घंटी के अनुसार आठ घंटे काम करना, रोज़ स्नान करना, तीन बार चावल व कढ़ी का ही क्यों न हो पर्याप्त भोजन करना, ऐसी दिनचर्या का समावेश हुआ। सामुदायिक प्रार्थना, संगीत और मनोरंजन के कार्यक्रम भी चलते थे। सभी ने लिखना-पढ़ना सीखने की उत्सुकता दिखायी। इनके लिए शिबिर का अनुभव नया ही था।

इस प्रकार शिबिर में शामिल होनेवाले भाई-बहन खेती से फ़ुरसत के मौसिम में साल में 5-6 महीने इस तरह मिट्टी का काम करेंगे और महीनों के आख़िर में खाने-पीने के खर्च के बाद 50-60 रुपये घर ले जा सकेंगे, ऐसी अपेक्षा है। लेकिन पहले-पहल इन शिबिरों के लिए कुछ आर्थिक हानि भी उठानी पड़ेगी। हर शिबिरार्थी के लिए हर माह 25 रुपया खर्च होगा। लेकिन उससे 15-20 रुपये से ज़्यादा काम नहीं मिलेगा। लेकिन कार्यक्षम नागरिक बनाने की दृष्टि से इस प्रकार की मदद देना आवश्यक है। 1957 के जून तक इस प्रकार के एक हज़ार भूमिसेवक तैयार करने की महत्वाकांक्षा रखी गयी है और यह भी आशा है कि इनमें से सौ दो सौ ज़िम्मेवार कार्यकर्ता आगे चलकर मिलेंगे जो गाँव में निर्माण काम की जिम्मेवारी उठा सकेंगे।

पिछले अध्यायों में गाँव के युवकों को बढ़ईगिरी तथा लोहारी की तालीम देने की योजना का उल्लेख आया है। स्थानिक

कार्यकर्ताओं को इंजिनीयरिंग तथा खेती के काम में तालीम देकर अपनी योजनाओं के लिए आवश्यक तज्ञवर्ग निर्माण करने का कार्यक्रम भी हाथ में लिया गया है। इन सब शिक्षणों का केंद्र रायगडा में होगा। ये सारे उपक्रम धीरे-धीरे विकसित होकर आगामी ग्रामराज्य के ग्रामीण विश्वविद्यालय के मध्य-बिंदु बनेंगे इसकी कल्पना हमें अच्छी तरह से आ सकती है। निर्माण काम के लिए सैकडों तज्ञों की जरूरत होगी। आज ऊपर के वर्ग के लिखे-पढे लडकों को लेकर काम शुरू हो गया। लेकिन जैसे-जैसे गाँव में नई तालीम का प्रसार होता जाएगा वैसे-वैसे उसके लडके इन कामों में आते जाएँगे और उनकी योग्यता भी अधिक होगी, क्योंकि उनको धंधों के जरिये अमली काम की तालीम मिली हुई होगी। कारीगर मिस्त्री से लेकर इंजिनीयर तक या खेतिहर से लेकर रिसर्च करनेवाले विद्वान तक जितने विद्यार्थी यहाँ से तालीम लेकर तैयार होंगे, उनमें से हर एक की तालीम समाज की किसी एक आवश्यकता की पूर्ति के लिए ही हुई होगी। इसलिए आज का सारा शिक्षण जो उद्देश्यहीन, अनिश्चितता से भरे बेकार वर्ग तैयार करता जा रहा है उसका उलटा चित्र ही वहाँ देखने को मिलेगा। निश्चित लक्ष्य की ओर आनंद तथा उत्साह से जानेवाले उमंग से भरे नौजवानों का निर्माण यहाँ होगा। उच्च शिक्षण की सारी व्यवस्था आज जो उलटकर अपनी सिर पर खडी हुई दीखती है उसे सीधा करके

रख दिया जाएगा और एक सामाजिक सिरदर्द के बदले वह सामाजिक प्रगति का मध्यम बनेगी।

आदिवासियों में अपनी अलग-अलग भाषाएँ हैं, लेकिन उनमें कोई प्रकाशित साहित्य नहीं है। अब उड़िया लिपि में इन भाषाओं की छोटी-छोटी पुस्तकें प्रकाशित करने का कार्यक्रम शुरू हुआ है। उड़िया के सुप्रसिद्ध साहित्यिक श्री गोपीनाथ महांति कंध तथा गादवा भाषाओं के विद्वान हैं। उनके द्वारा लिखित कंध भाषा के संगीतों की पुस्तक प्रकाशित हो चुकी है जो लोगों में बहुत ही आदृत हुई है। इसके अलावा कार्यकर्ताओं तथा विद्वानों के उपयोग के लिए कंध तथा गादवा भाषातत्व-विषयक प्रामाणिक पुस्तकें भी प्रकाशित हो रही हैं। इन भाषाओं के शब्दकोष तथा व्याकरण आदि भी प्रकाशित करना है।

15. आरोग्य और सफ़ाई

तुवाकणा नाम के गाँव में विनोबाजी का पड़ाव था और पद-यात्रीदल गाँववालों के ही बरामदों पर अपना डेरा डाले हुए थे। विनोबाजी के लिए गाँव के मुखिया ने अपना घर खाली कर दिया था। सभी घर मिट्टी और फूस के ही थे; लेकिन उनकी सफ़ाई, सजावट और कलामयता ने सबके मन को मोह लिया। दीवारें रंगबिरंग की मिट्टी से लीपी हुई थीं, घर का चट्टान इस तरह चमकता था मानों सीमेंट की प्लैस्टिंग हुई हो, घर-गृहस्थी के साहित्य अपनी अपनी जगह पर व्यवस्थित रूप से रखे हुए, शांतिनिकेतन के नामी कलाकार भी सुंदरता की दृष्टि से इससे अधिक कर नहीं पाते।

उस दिन प्रार्थना-प्रवचन में विनोबाजी ने कहा—"आदिवासियों के घर में रहने का मेरा यह पहला ही अनुभव है। इसके सिवा मेरे अनुभव में पूर्णता नहीं आती। जिन लोगों में इस प्रकार ऊँचे स्तर का कलाबोध और स्वच्छता है उनकी नैतिकता भी ऊँचे स्तर का होना स्वभाविक ही है। अगर वे ग्रामदान करेंगे तो इन गुणों के साथ समाजभावना-रूपी चौथे गुण का समावेश होगा।"

लेकिन ग़रीबी और अज्ञान के कारण इनमें कई गंदी

आदतें भी दृढ़मूल हो गयी हैं जिनकी इस फलाबोध तथा सफ़ाईगिरी के साथ सहावस्थिति अत्यंत अयौक्तिक माॡम होता है।

पानी के अभाव के कारण नहाने-धोने की आदतें नहीं के बराबर हैं। कपड़ों का अभाव भी इन कारणों में एक वृद्धि करता है। तंबाखू का अत्यधिक उपयोग के तथा जहाँ-तहाँ थूकने की आदत का सीधा संपर्क है। जाड़े के मौसिम में बंद घरों में आग सुलगाकर उसके पास सोना-बैठना पड़ता है; इसलिए आँखों पर, सामान्य आरोग्य पर उसका कुपरिणाम होता है। फिर शराब और धुआँखोरी का परिणाम और इन सबके आक्रमण के सामने शरीर की प्रतिरोध-शक्ति के अंदर से खानेवाला बड़ा शत्रु पौष्टिक भोजन का अभाव तो है ही।

तिसपर भी लोगों का आरोग्य सामान्यतया अच्छा ही माना जाएगा। मलेरिया दूसरे प्रदेशों की तुलना में कुछ अधिक है। दूसरी आम बीमारियों का दौरा दूसरी किसी जगह की जैसी ही है। आदिवासियों की एक ख़ास बीमारी 'यज' (yauls) है जो सिफ़िलिस जैसी दीखती है लेकिन यौनजन्य नहीं हैं। कई हिस्सों में इसका फैलाव काफ़ी मात्रा में है। इन क्षेत्रों में सरकारी या गैरसरकारी दवाखानों की संख्या नगण्य है।

पहाड़ों, जंगलों में असंख्य प्रकार की जड़ी-बूटियाँ हैं और स्थानिक लोग परंपरा से इनका उपयोग भी जानते हैं;

हालाँकि यह ज्ञान अब मुरझाता जा रहा है। ग्रामीणो के लिए विनोबाजी की यह सूचना थी कि वे इन जडी-बूटियाँ तथा नैसर्गिक उपचार पर आधारित अपनी आरोग्य और उपचार-योजना बनायें। हर गाँव में जडी-बूटियो का एक छोटा-सा बगीचा हो जिसमें से लोगों को ताजी दवाएँ मिलें। इनके उपयोग का जानकार वैद्य भी गॉव में हो। साथ-साथ अतर्राष्ट्रीय मान्यता पर्याप्त क्विनैन, डिडिटि आदि जैसी दवाओं का भी विवेकयुक्त उपयोग किया जाय।

शराब और तंबाखू की बुरी आदतें छोडने तथा दूध पीने की आदत डालने के लिए विनोबाजी ने लोगों को अपनी सारी शक्ति से समझाया था और कोरापुट तथा गजाम जिलों मे सरकार के शराबबदी करने के निर्णय का पहले ही जिक्र किया गया है। बालेश्वर के क्षेत्र में पहले से ही शराबबंदी थी। अब एक महीने में इसका जितना परिणाम दिखायी दिया है उससे पता चलता है कि लोगों ने काफ़ी अनुशासन-बुद्धि से सरकार की आज्ञा को मान लिया है। विनोबाजी की वाणी का तथा कार्यकर्ताओं के प्रचार का असर हुए बिना कैसे रहता? अभी चैत्रपर्व के अवसर पर, जिसमें आदिवासियों के मनोरजन तथा उत्सवों में शराब का एक मुख्य स्थान होता है, कई स्थानों पर शराब का उपयोग नहीं के बराबर पाया गया। 1930 के स्वराज्य सग्राम के जमाने में भी लोगों में सुधार की एक बाढ आयी थी और सैकडों गाँव के हजारों लोगों ने तभी से शराब त्याग रखा

था। उसी प्रकार का तथा उससे अधिक बलवान एक बाढ़ अब आ रही है और इसमें संदेह नहीं कि शराबबंदी यहाँ पूर्णतया सफल होकर ही रहेगी।

पेन्सिलिन इंजेक्शन से 'यज़' की बीमारी अद्‌भूत शीघ्रता से मिट जाती है। इसके प्रतिकार की योजना सरकार ने बना रखी है, लेकिन वह हमेशा की तरह मंदगति से ही चलती है। निर्माण समिति की ओर से एक कार्यकर्ता वैद्य के द्वारा 'यज़' निवारण का प्रयोग गरंडा के क्षेत्र में किया गया था, जहाँ इन्होंने चार महीनों में 2936 यज़ रोगियों का इलाज किया तथा 20 या 22 गाँवों में से यह रोग निर्मूल कर दिया गया। डाक्टरों का एक झुण्ड 6 महीनों के लिए ज़ोर लगावें तो सारे क्षेत्र में से यह रोग का निर्मूल संभवनीय है और मेड़िकल कालेज के विद्यार्थी तथा कुछ डाक्टर मित्रों की सहायता से इस प्रकार का एक अभियान शुरू करने की योजना सोची जा रही है।

पहले से जहाँ रचनात्मक काम के केन्द्र थे वहाँ कार्यकर्ताओं ने, खासकर के बहनों ने लोगों में सफ़ाई की अच्छी आदतें डालने में काफ़ी सफलता प्राप्त की थी और कार्यकर्ता भाई-बहनों के संस्पर्श से वैसा सुधार अब पहले से अधिक तेजी से फैलेगा। केन्द्रों में टेंट, और बाल्टी पखाने अवश्य ही होंगे और लोगों के लिए नमूने का काम करेंगे। आगे चलकर उनके प्रचार की योजना भी बनेगी।

स्वच्छ और पर्याप्त पानी, पौष्टिक भोजन तथा पर्याप्त कपड़ा मिलने पर निसर्ग की गोद में खेलनेवाली यह प्रजा आरोग्य तथा साफ़-सुथरेपन में दुनिया की किसी प्रजा से पीछे नहीं रहेगी।

16. ग्रामराज्य और सरकार

पहले के एक अध्याय में बताया जा चुका है कि हर ग्राम-दानी गाँव में जमीन के पुनर्वितरण के समय गाँव की एक समिति बनायी जाती है और इसी समिति के जिम्मे गाँव की जमीन तथा नवनिर्माण का काम रहता है।

इसी ग्रामसमिति को हम भविष्य की शासन-मुक्त समाज-व्यवस्था का बीजस्वरूप मान सकते है। निर्माण ही जीवन का मुख्य तत्व है, शासन नहीं; इसलिए यह ठीक ही है कि नवनिर्माण के काम से ही इन समितियों की जिम्मेवारी शुरू होती है। पुराने ढंग से जहाँ ग्रामपंचायत बनाये जाते है वहाँ राज्य-सरकार की ओर से ऊपर से आ पडनेवाली कुछ जिम्मेवारियों के पालन से ही उनके जीवन का श्रयमारंभ होता है। इससे यह मनोदशा दृढ होती है कि इन पंचायतों के कार्यकर्ता सर्वप्रथम राज्यसरकार के एजेंट है और उसके बाद ही गाँव के प्रतिनिधि हैं। इससे स्वतंत्र कर्तृत्व का विकास भी बाधाप्राप्त होता है।

कल्पना की आँखें आगे दौड़ाकर हम देख सकते हैं कि आगे चलकर ये समितियाँ सरकार की बहुत सारी जिम्मेवारियाँ अपने पर ले लेंगी, कुछ तो सरकार स्वेच्छा से, राजी-खुशी से अब भी छोड़ देने के लिए तैयार होगी और कुछ महत्व के अधिकारों के लिए थोड़ा लड़ना-झगड़ना भी शायद पड़ेगा।

तल्ग के श्री मुदी नायक—हँसते हँसते साठ में से पचास एकड छोड दिये।

गाँव के झगड़े-फ़सादों को सुलझाने की ज़िम्मेवारी ग्राम-पंचायतें सहज ही महसूस करती हैं। गाँव का झगड़ा गाँव के बाहर कचहरी में न जावे यह विचार ग्रामवासियों को अत्यंत आकर्षक मालूम होता है। कचहरी के ज़रिये गाँव का कितना नुकसान होता है उसका अनुभव उन्हें होता ही है, यद्यपि अकसर झगड़ा और जिद्द के दुष्ट-चक्र में फँसकर वे इनसे अपने को आसानी से मुक्त नहीं कर सकते। लेकिन गाँवों के शायद नब्बे फ़ी सदी झगड़ों की जड़ तो ज़मीन की मालकियत में होती है और जहाँ मालकियत ख़तम हुई वहाँ इन झगड़ों की जड़ भी कट जाती है।

मानपुर में तो ग्रामदान से पहले ही दो-तीन सालों तक लोगों ने गाँव का एक भी झगड़ा कोर्ट में नहीं जाने दिया था और बाद में यह स्थिति और ही अच्छी हुई है। दूसरी जगहों के अनुभव भी इसी प्रकार के हैं। कोरापुट-गंजाम के लोग सद्भाग्य से कोर्ट-कचहरियों के आदी नहीं थे। बालेश्वर की तरफ़ स्थिति दूसरी प्रकार की थी। लेकिन वहाँ के झगड़ों को कचहरी में ले जाना बंद हो गया है।

वैसे हिन्दुस्तान के गाँव में अपराध का प्रमाण पश्चिम के देशों की तुलना में कम है। इस अपराध-न्यूनता का श्रेय भारत की समाज व्यवस्था को है जो टूटे-फूटे होने पर भी व्यक्ति को सन्मार्ग पर दृढ़ रहने में मदद करती है। आर्थिक विषमता और

बेकारी गाँवों में अपराध-प्रवणता के सबसे बडे दो कारण हैं। कुछ वर्ष पहले सुरेश राम भाई ने राजस्थान के एक रचनात्मक कार्यकेंद्र का अपना अनुभव प्रकाशित किया था, जहाँ ग्रामाद्योगों के प्रसार के कारण अपराधों की संख्या आश्चर्यजनक रूप से घट गयी थी और इसकी सबूत खुद वहाँ की पुलिस ने दी थी। निस्संदेह भूमिहीनों को जमीन मिलने के तथा धंधों के निर्माण के साथ-साथ वहाँ की बची हुई अपराध-प्रवृत्ति भी मुरझाती जाएगी।

ग्रामदानियों को विनोबाजी की यही अनुज्ञा है कि अपने गाँव में इस तरह से बरतो। जैसे वहाँ पुलिस का कोई काम ही न रहे।

बालेश्वर के पाखरा गाँव के एक दागी चोर को लोगों ने श्रद्धा से जमीन दी और वह अब गाँव का एक सम्मानित किसान बन गया है। विनोबाजी ठीक ही कहते है कि—"जहाँ दूसरे लोग उसे तीन साल की जेल की सजा देते है वहाँ हम उसे तीन एकड़ जमीन दे देंगे। वह उसपर काम करेगा और अपने परिवार को पालेगा-पोसेगा। सोचने की बात यह है कि कुछ लोग मालिक बन बैठे हैं, यही समाज मे अपराधों के बढ़ने का कारण है।"

सरकारी तंत्र के साथ किसान का दूसरा महत्व का संबन्ध आता है जमीन और लगान के मामले में; यह पहले के एक अध्याय में कहा जा चुका है कि ग्रामदानी गाँव में जमीन का

सारा एकड़ ग्रामसभा के पास ही रहेगा। सरकार के रेविन्यू विभाग में हर किसान का अलग रेकार्ड नहीं होगा। सारे गाँव का एक ही हिसाब उनके पास होगा। गाँव का लगान भी ग्रामसभा की ओर से एक साथ देने का आग्रह रखा गया है। इसी आग्रह के कारण मंगरोठ में एक भूलों का नाटक बना था और वहाँ के कुछ किसान गिरफ़्तार हो गये थे। उड़ीसा में इस बारे में कानून बनाने के लिए सरकार से अरज किया गया है, जिम कानून में ज़मीन के ग्रामीकरण और गाँव की तरफ़ से लगान भरने की व्यवस्था को मान्यता दी जाएगी। आगे चलकर लगान पैसे में न देकर अनाज में देने की व्यवस्था स्वीकृत करने का विचार भी आँखों के सामने है।

अब यह हालत है कि सरकार पहले गाँवों से लगान वसूल करके ले जाती है और फिर ऊपर से गाँव को मदद करती है। जमींदारी उन्मूलन के बाद जो अंचल-शासन व्यवस्था कई प्रांतों में कायम होने जा रही है उसके द्वारा भी स्थिति में बहुत फ़रक नहीं होता। लेकिन ग्रामदान के बाद की अंतिम स्थिति यह होगी कि ग्रामसभा लगान का अपना हिस्सा सीधा रख लेगी और राज्य सरकार केन्द्रित तंत्र के संचालन के लिए जितना चाहिये उतना ही उसको दिया जाएगा। आज तो जमीन का लगान सरकारों की आमदनी का एक छोटा-सा जरिया है। कपड़ा, तेल, शक्कर, सलाई आदि लोगों के नित्य

उपयोग की वस्तुओं पर टैक्स तथा इनको बनानेवाली व्यापारिक सस्थाओं के मुनाफे पर इनकम टैक्स आदि से ही उनको ज्यादा आमदनी होती है। इन नित्य उपयोग की वस्तुओ में गॉव स्वावलची बन जाएँगे तो सरकारों का परोक्ष टैक्स का यह जरिया बहुत ही सीमित हो जाएगा और फिर धन के लिए सरकार को ग्राम सभाओं के पास आना पडेगा।

किसी गॉव के पचहत्तर या अस्सी फीसदी लोगों ने ग्रामदान दिया और बाकी ने नही दिया तो उनको इसमें शामिल करवाने के लिए कानून का आश्रय मिलना चाहिए या नहीं? इस बारे में विनोबाजी ने कहा था—"गाँव की सारी जमीन गाँव की हो इस प्रकार का सक्रिय जनमत बन जाएगी, याने लाखों लोग ग्रामदान करेंगे तो आगे चलकर जमीन का ग्रामीकरण करनेवाला कानून भी बनेगा। यह कानून जनमत के अनुसार बनेगा, इसलिए वह जनप्रिय होगा, अप्रिय नहीं। मान लीजिये किसी गाँव के अस्सी फी सदी लोग ग्रामदान करते है लेकिन मोह के कारण बाक़ी के बीस फी सदी नही करते, लेकिन वे विचार को तो पसद करते हैं? ऐसी हालत में कानून बनाया जा सकता है।" अब व्यावहारिक रूप से भी यह सवाल सामने आ रहा ह। किसी गाव के बहुत सारे लोग ग्रामदान में शामिल हों और कुछ अलग रहे और ग्राम सभा को गाँव की सारी जमीन के नियोजन तथा लगान वसूल करने का अधिकार

देनेवाला कानून बने तो इनकी स्थिति क्या हो? क्या सरकार में इनका अलग रेकार्ड रहे या गॉव की इकाई में शामिल होने के लिए कानून इन्हें मजबूर करे? कानून का मसविदा बनाने के लिये उत्कल प्रांतीय भूदान समिति ने जो उपसमिति बनायी है वह इन समस्याओं की छानबीन करेगी।

ग्रामदानी गाँव में आपस का किस प्रकार का सबध व सगठन हो, यह सवाल भी सामने आता है। यह ग्रामराज्य की सीढियों के निर्माण का सवाल है। व्यावहारिक प्रयोग और अनुभव से इसका रास्ता निकलने का एक बहुत बडा अवसर आज हमारे सामने प्रस्तुत है। नदी नालों के पानी का उपयोग, उनके गॉवों के काम आनेवाले धधों का नियत्रण, केन्द्र भडारों का सचालन आदि कई समस्याएँ ऐसी आएँगी जिसमें एक एक क्षेत्र के कई गावों को लेकर पचायत बनाने की आवश्यकता होगी। कर्तृत्वविभाजन तथा शासन-मुक्ति के सिद्धातों को ध्यान मे रखकर हम काम करते जाएँगे तो इस सगठन का असली रूप भी हमारे सामने धीरे-धीरे व्यक्त होता जाएगा।

17. नवनिर्माण का समग्र दर्शन

ग्रामदान के गाँवों में नवनिर्माण की जो विविध प्रवृत्तियाँ शुरू हुई हैं उनका समग्र चित्र इस समय किसी एक गाँव में मिलना आसान नहीं है। काम शुरू होने में ज़्यादा दिन नहीं हुए और सब काम भी सब जगह शुरू नहीं हुए हैं। फिर भी भविष्य के चित्र के नमूने के तौर पर हम गंजाम जिले के आकिलि को ले सकते है। यहाँ की जमीन का बंटवारा विनोबाजी के हाथों हुआ था और यहाँ पहले से ही नवजीवन मंडल की ओर से कुछ रचनात्मक प्रवृत्तियाँ चल रही थीं। इसलिए वहाँ का काम कुछ आगे बढा है। पहाड़ों के बीच में बसा हुआ यह गाँव जिले के मुख्य शहर ब्रह्मपुर से 42 मील पर है। गाँव की आबादी 151 है। यहाँ के 35 परिवारों में से 27 शवर जाति के आदिवासियों के, 7 पाण जाति के हरिजनों के तथा एक परिवार गुडिया (हलवाई) है। गाँव की जमीन शवरों के ही हाथों में थी, पाण लोग भूमिहीन थे। गंजाम एजेंसी के पाण भूमिहीन होते हुए भी व्यापार में काफ़ी आगे बढे हैं और स्वभावत. कुछ शोषण भी चलाते हैं। इसलिए आदिवासियों से उनका काफी मनमुटाव है। 15-16 साल पहले इसी गंजाम एजेंसी में दोनों जातियों में बडा भारी संघर्ष भी हो गया था।

इस पार्श्वभूमि को ख्याल में रखेंगे तो आकिलि के आदिवासी पाणों को जमीन देने के लिए तैयार होने में भावना का कितना बडा परिवर्तन हुआ है इसका भान हमें हो सकेगा। यहाँ के हलवाई परिवारने जमीन नही ली है। गॉव की कुल जमीन 250 एकड भी है, जिसमें से 30 एकड धान की तरी जमीन, 137 एकड सूखी जमीन, 20 एकड गॉव की बस्ती तथा 57 एकड पडती है।

बँटवारा फ्री व्यक्ति औसत एक एकड के हिसाब से हुआ है। सामूहिक खेती के लिए 22 एकड रखे गये है।

सामूहिक खेती मे से इसके पहले साल करीब 50 मन धान तथा रागी, सरसो, उडद, गेहूँ, चने तथा आलू की फसलें मिली है। गाँव में लोगों ने गोभी, टमाटर, अनानस आदि की खेती शुरू की है, जो इस इलाके में एक नया उपक्रम है। फलों के पेड भी लगाना शुरू किया है।

यहाँ नवजीवन मंडल की दो सेविकाएँ तथा एक सेवक है। सेवक श्री नीणमणि भाई नैसर्गिक उपचार के शिक्षण प्राप्त कार्यकर्ता हैं और यहाँ उसके प्रयोग भी करते हैं। यहाँ की ग्राम सभा की कार्यवाही की समिति 'मत्री मंडल' के नाम से परिचित है। श्री धर्मनायक इसके मुख्यमंत्री हैं। इनके अलावा सहकार, खादी-ग्रामोद्योग, खेती, शिक्षण, तथा अतिथि खाते के भी मंत्री है। सहकार खाते के मंत्री सहकारी भंडार

का काम संभालते हैं। इस भंडार के लिए गाँव से 31 रुपये की पूँजी इकट्ठी की गयी थी और जिला कोआपरेटिव बैंक से 500 रुपये की मदद मिली थी। यह भंडार 1955 के जुलाई में शुरू हुआ था और इन 9 महीनों मे इसके ज़रिये करीब 2,700 रुपयों का माल बेचा गया है। खरीदी की कीमत पर रुपये में एक आना मार्जिन रखा जाता है और इस तरह से दूकान को 168 रुपये का मुनाफ़ा मिला है। माल दूसरी जगहों की तुलना में सस्ता होता है; इसलिए आसपास के गाँवों के लोग भी यहीं से खरीदते है। भंडार से लोग अकसर अनाज आदि के विनिमय से ही सामान खरीदते है और यह अंदाज लगाया गया है कि इस तरह के अदलाबदली का कारोबार कुल कारोबार का 85 फी सदी तक होगा। पिछले अक्तूबर में यहाँ स्वावलंबन की दृष्टि से शुरू हुई और अब 38 किसान चर्खे चलाते हैं। 26 भाई तथा 10 बहनें कातती है। इसके अलावा बच्चे भी तकली पर कातते हैं। महीने में औसतन 5 सेर सूत मिलती है। एक अंबर चर्खा भी यहाँ पहुँच गया है तथा दो भाइयों ने उसपर कताई सीख ली है। यहाँ शीघ्र एक करघा भी चालू होनेवाला है। इस साल 5 एकड में कपास की खेती की गयी थी लेकिन अधिक वर्षा के कारण वह नष्ट हो गयी।

गाँव में कोई शाला नहीं है। सेविकाएँ बच्चों को पढाती है। बडों की एक निशापाठशाला भी चलती है। इसमें

20-22 प्रौढ तथा जवान आते है। एक छोटा-सा वाचनालय की भी स्थापना हुई है।

सर्व सेवा संघ की मदद से यहाँ एक गाँधी घर का निर्माण शुरू हुआ है। सरकार से एक कुएँ के लिए 2,000 रुपये तथा तालाब के लिये 1000 रुपये मिले है। ग्रामवासियों का श्रमदान 275 रुपये की सरकारी मदद से आधा मील लंबा एक रास्ता सरकारी मैन रोड से गाँव तक बना है।

दूसरे आदिवासी गाँवों की तरह इस गाँव की भी रचना बडा सुदर है। गाँव के मकान दो सीधी कतारो में है जिनके बीच करीब सौ फुट का फ़ासला है। बीच में गाँव के भंडार, पचायत घर, तथा भागवत घर हैं। ग्रामदान के बाद गाँव की सफाई में तरकी हुई है। गाँव में पहुंचते ही देखने में आएगा कि बीच का रास्ता दुरुस्त होकर समतल हुआ है उसमें पहले के जैसे नोकीले पत्थर निकले हुए नहीं है, गाय बाधने के खूँटे भी वहाँ से ग़ायब हो गये है। खेती के औजार इधर-उधर तितर-बितर पड़े हुए नहीं है। हर घर के पीछे राख तथा कूड़ाकर्कटों का जो ढेर रहता था उसे अब कंपोस्त के गड्ढे में व्यवस्थित स्थान मिल गया है। गाँव के लोग रोज कुछ सामूहिक सफ़ाई के काम करने के आदी हो रहे हैं।

गाँववालों पर कर्ज का काफ़ी बोझ है और उसे चुकाने के लिए पंचायत की ओर से सामूहिक व्यवस्था करने की बात

इनको सूझी है। इसलिए उन्होंने इस साल व्यक्तिगत रूप से कर्ज चुकाना बंद रखा है। नया कर्ज पर रोक लगाने के लिए शादी, श्राद्ध आदि सामाजिक क्रियाओं का पालन गाँव की तरफ से सामूहिक रूप से करने का निश्चय किया है। इस तरह गाँव के मृतकों के श्राद्ध तथा तीन शादियाँ गाँव की ओर से बहुत ही किफायत से की गयी हैं।

आकिलि के शवर प्राणों के साथ सामूहिक जीवन बिताने लगे इसलिए आसपास के दूसरे गाँवों के (जहाँ ग्रामदान नहीं हुआ है) शवरों ने उनका बहिष्कार किया था। इस गाँव के लड़के-लडकियों की शादी-व्याह कराना कठिन हो गया था। फिर भी ये लोग अपनी निष्ठा में अडिग रहे। अब बहिष्कार की उत्कटता धीरे-धीरे घट रही है।

गाँव के मवेशियों के मलमूत्र का समुचित उपयोग के लिए उन्होंने एक नया प्रयोग शुरू किया है। गाँव के सारे मवेशियों को पटाने का जिम्मा एक मनुष्य को दिया गया है और वह उनको बारी-बारी से अलग-अलग खेतों में रात को बांधता है। इसके लिए खेतों की एक क्रमिक सूची भी बनायी गयी है।

थोडे ही दिनों में इतनी प्रगति आशाप्रद ही मानी जाएगी। आकिलि के लोगों में जो उत्साह तथा कर्मप्रवणता का दर्शन होता है उसके स्रोत हर गाँव में है और आवश्यक मार्गदर्शन तथा

सहायता मिलने पर वे प्रगति के पथ पर शीघ्रता से आगे बढ सकेंगे, इसमें संदेह नहीं है ।

यहाँ मानपुर के कुछ विशिष्ट अनुभवों का उल्लेख करना उचित होगा । यहाँ ग्रामदान तथा उसका बँटवारा काफी अर्से से होते हुए भी काम उतना आगे नहीं बढा है, क्योंकि यहाँ के नवनिर्माण पर उचित ध्यान नहीं दिया जा सका । फिर भी अपने बल से इन्होंने कुछ प्रगति की है ।

यहाँ सामूहिक खेती का प्रयोग पहले शुरू हुआ है । सामूहिक खेती का तरीका इन्होने यह रखा कि हर एक परिवार को सामूहिक खेत के एक-एक टुकड़े का जिम्मा दे देते हैं जिसको वह आबाद करता है । इस तरह 1954-55 के मौसिम में इन्हें इसमें से 230 मन धान प्राप्त किया था जिसकी क़ीमत 1,656 रुपये आकी गयी थी । इसमें लोगों ने जितना श्रम तथा बीज आदि साधनों का दान किया था उसकी कीमत हम पैसे में करेंगे तो एक हजार रुपये तक होगी । यह धान गाँव की सामूहिक निधि में जमा हुआ । दूसरे साल बाढ के कारण गाँव की सारी फ़सल नष्ट हो गयी । अनाज का दुष्काल हुआ । उस समय इस निधि से लोगों को 60 मन धान तथा 500 रुपये बिना व्याज के कर्ज दिये गये । इस गाँव में बाहर से कर्ज लेना बंद हुआ है । यह गाँव समुद्रतट से 21 मील दूर है । गरमी के मौसम में यहाँ की नदियों में समुद्र के नमकीन पानी का ज्वार

आता है और खेतों में फैलकर ज़मीन को खारा बना देता है। इससे बचने के लिए गाँववालों ने श्रमदान से करीब दो मील लंबा तथा दो फुट ऊँचा एक बाँध बनाया। इसमें गांव के 200 स्त्री-पुरुषो ने आठ दिन श्रम किया।

यहाँ का समवाय भंडार भी इन्होने बाहर की मदद के बिना ही चलाया है। इसके लिए हर परिवार से दो रुपये के हिसाब से 240 रुपये का शेयर तथा ग्रामनिधि से 408 रुपया लिया गया है। अठारह महीनों में इस दूकान के कारोबार में 2,262 रुपयों का नफ़ा हुआ था, जिसमें से दूकान चलानेवाले भाइयों को 990 रुपये मेहनताना दिया गया था।

यहाॅ पानी के लिए कुआँ नहीं है न बन सकता है। इसलिए गाँववालों ने अपने तालाब को पीने के पानी के लिए ही सुरक्षित रखा और उसमें नहाने-धोने की कड़ी मुमानियत रही। गाँव के बच्चे-बूढ़े, भाई-बहन जिस निष्ठा से सफ़ाई के इस नियम को पालते है वह सचमुच आश्चर्य का विषय है। फलत: गाँव से बीमारियों का प्रकोप मिट गया है। इनके देखा-देखी आसपास के गाँवों में भी लोगों ने अपने एक-एक नाला को सुरक्षित रखना शुरू किया है। बाद में ही मानपुरवालों ने नहाने-धोने के लिए दूसरा तालाब श्रमदान से खोदा।

इस तरह से उनके जीवन में सामूहिक श्रमपरायणता का खास विकास हो रहा है।

18. भविष्य का चित्र

विनोबाजी ने यह आशा रखी है कि ग्रामदान से आखिर प्रदेशदान फूट निकलेगा। जहाँ ग्रामदानों का बँटवारा हो रहा है वहाँ आसपास के गाँवों में भी ग्रामदान करने की उत्सुकता पैदा होते दिखाई दे रही है और निर्माण की योजनाओं का स्वरूप व्यक्त होने पर यह उत्सुकता और भी बढेगी। आज कोरापुट के गाँवों का आठवाँ हिस्से से अधिक ग्रामदान में मिला है। आगे यह अधिक तेजी से फैलेगा, इसमें संदेह नहीं। दूसरे जिलों में भी उसी प्रकार का विस्तार अपेक्षित है।

यह यज्ञाग्नि आज मंगरोठ या उडीसा में सीमित नहीं रही है। इसकी चिनगारियाँ हिंदुस्तान के पूरब, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण—चारों दिशाओं में फैल चुकी हैं। उत्तर प्रदेश में ग्रामदानो की सख्या एक मगरोठ से बढते-बढते अब आठ तक पहुँच चुकी है। राजस्थान में काफी पहिले से एक ग्रामदान मिला हुआ था, अब वह तीन तक पहुँचे हैं। बंगाल'में भी धीरे-धीरे पाच तथा बिहार के आदिवासी प्रदेशों में सत्ताईस मिले हैं। हिंदुस्तान के मध्य में मध्य भारत तथा सुदूर दक्षिण में केरल भी एक एक ग्रामदानों से शोभित हैं।

तमिलनाडु में पहले दो ग्रामदान मिले थे अब चार

हुए है। हैदराबाद से भी चार ग्रामदानों की खबर आयी है। उत्तर सुदूर पूर्व के असम में भूदान-यज्ञ की गति धीमी रही, लेकिन पिछले दिनों वहाँ श्री आशा देवीजी के दौरा के समय एक सघन क्षेत्र में ग्यारह ग्रामदान मिल ही गये।

इनमें से जितने गाँवों के बारे में कुछ जानकारी मिली है उससे पता चलता है कि अलग-अलग परिस्थितियों में इनका उदय हुआ है, भिन्न-भिन्न संस्कारों में पले मनुष्यों ने इसको स्वीकार किया है और इसपर से हम यह कह सकते है कि सारे हिंदुस्तान का क्षेत्र ही आज इस क्रांति के लिए अनुकूल है।

असम के ग्रामदानी गाँवों के लोगों की आध्यात्मिक वृत्ति देखकर श्री आशादेवीजी चमत्कृत हुई थीं। इन गाँवों की स्थिति कुछ विषयों में उड़ीसा से बेहतर है। यहाँ बहुत सारे लोग लिखे-पढे है। गाँवों में कताई-बुनाई अच्छी तरह से चलती है। शालाएँ है।

तमिलनाड्ड का वायलुर गाँव मद्रास से सिर्फ 25 मील है। यहाँ के बडे मालिक श्री रामकृष्ण रेड्डीजी ने श्री शंकररावजी के साथ पद-यात्रा में 15 दिन बिताये तथा अपना गाँव ग्रामदान करना तय किया। अपनी 87 एकड जमीन दान करके उन्होंने गाँववालों को ग्रामदान के लिए प्रेरित किया। यहाँ सिर्फ आठ भूमिवान तथा तेईस भूमिहीन परिवार थे। गाँव की कुल जमीन 890 एकड का समान रूप से बँटवारा हुआ है।

इसी प्रांत में मदुरा शहर से 10 मील दूर पर सुनाडीपट्टी जरायमपेशों का गॉव था। एक क्रांतिकारी सेवक की बीस वर्षव्यापी अतंद्रित सेवा से इनमें परिवर्त्तन आया और आगे चलकर वे ग्रामदानी हुए।

इस तरह से यह ठंडी आग हिन्दुस्तान की ग्रामीण जनता के हृदय को स्पर्श करती, नये समाज की आकांक्षा से प्रज्वलित होती हुई धीरे-धीरे फैल रही है। आज देश के चारों ओर ग्यारह सौ से अधिक गाँव में भूमिक्रांति के जो पावन तीर्थों की स्थापना हुई है उन्हीं पीठों से भारत के पॉच लाख गाँवों में एक न एक दिन उस क्रांति की ज्योति फैलेगी और देश के कोने-कोने से मालकियत की भावना को मिटाकर ही रहेगी, इसमें संदेह नहीं।